

Chapter आठ

भगवान् कृष्ण द्वारा अपने मुख के भीतर विराट रूप का प्रदर्शन

आठवें अध्याय का सारांश निम्नवत् है—

इस अध्याय में कृष्ण के नामकरण-संस्कार का वर्णन हुआ है। इसमें उनका घुटनों के बल सरकना, गौवों के साथ खेलना, मिट्टी खाना तथा एक बार फिर अपनी माता को विराट रूप दिखलाने का भी वर्णन मिलता है।

एक दिन वसुदेव ने यदुवंश के कुल-पुरोहित गर्गमुनि को बुलावा भेजा और जब गर्गमुनि नन्द महाराज के घर पहुँचे तो उन्होंने उनकी भलीभाँति आवभगत की और उनसे प्रार्थना की कि वे कृष्ण तथा बलराम का नामकरण कर दें। गर्गमुनि ने नन्द महाराज को याद दिलाया कि कंस देवकी के पुत्र की ताक में है, अतः यदि यह नामकरण संस्कार धूमधाम से मनाया जायेगा तो कंस का ध्यान इधर जायेगा और उसे सन्देह हो सकता है कि कृष्ण देवकी के पुत्र हैं। फलतः नन्द महाराज ने गर्गमुनि से प्रार्थना की कि वे किसी के जाने बिना यह संस्कार सम्पन्न करें और उन्होंने वैसा ही किया गया। चूँकि रोहिणी-पुत्र बलराम अन्यो के दिव्य आनन्द में वृद्धि करने वाला है इसलिए उसका नाम राम है और अपने असाधारण बल के कारण वह बलदेव कहलाता है। चूँकि वह यदुओं को अपने आदेशों का पालन करने के लिए आकृष्ट करता है इसलिए उसका नाम संकर्षण है। यशोदा-पुत्र कृष्ण इसके पूर्व कई रंगों में—यथा श्वेत, लाल तथा पीले रंगों में प्रकट हो चुका है और अब उसने श्याम रंग धारण किया है। चूँकि कभी वह वसुदेव का पुत्र था अतएव उसका नाम वासुदेव है। अपने विविध कार्यों तथा गुणों के अनुसार उसके अन्य कई नाम हैं। इस तरह नन्द को सूचित करके तथा नामकरण-संस्कार पूरा

करके गर्गमुनि ने उन्हें अपने पुत्र की सावधानीपूर्वक रक्षा करने की सलाह दी और विदा ली।

इसके बाद शुकदेव गोस्वामी ने वर्णन किया है कि किस तरह दोनों बालक अपने नन्हें-नन्हें पाँवों पर रेंगने, गौवों तथा बछड़ों के साथ खेलने, मक्खन तथा अन्य दुग्ध-पदार्थ चुराने और भांडे तोड़ने लगे। इस तरह उन्होंने कृष्ण तथा बलराम के अनेक नटखटतापूर्ण कार्यकलापों का वर्णन किया है। इनमें सबसे अद्भुत लीला वह है जब कृष्ण के साथियों ने माता यशोदा से यह शिकायत की कि कृष्ण मिट्टी खा रहा है। माता यशोदा इसके प्रमाण के लिए कृष्ण का मुँह खोलना चाहती थीं जिससे वे उन्हें दण्ड दे सकें। कभी वे दण्ड देने वाली माता का रूप धारण कर लेती थीं, तो अगले ही क्षण मातृ-प्रेम से विह्वल हो उठती थीं। इन सबका वर्णन कर चुकने के बाद शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित के अनुरोध पर माता यशोदा तथा नन्द के भाग्य की सराहना की। पूर्व जन्म में नन्द तथा यशोदा क्रमशः द्रोण तथा धरा थे और ब्रह्मा के आदेश से वे पृथ्वीलोक पर आये थे और उन्हें पुत्र रूप में भगवान् प्राप्त हुए।

श्रीशुक उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ।

व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; गर्गः—गर्गमुनि; पुरोहितः—पुरोहित; राजन्—हे राजा परीक्षित; यदूनाम्—यदुकुल के; सु-महा-तपाः—तपस्या में बड़े चढ़े; व्रजम्—व्रजभूमि में; जगाम—गये; नन्दस्य—नन्द महाराज के; वसुदेव-प्रचोदितः—वसुदेव की प्रेरणा से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, तब यदुकुल के पुरोहित एवं तपस्या में बड़े चढ़े गर्गमुनि को वसुदेव ने प्रेरित किया कि वे नन्द महाराज के घर जाकर उन्हें मिलें।

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।

आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उन्हें (गर्गमुनि को); दृष्ट्वा—देखकर; परम-प्रीतः—नन्द महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए; प्रत्युत्थाय—स्वागत करने के लिए खड़े होकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़े हुए; आनर्चं—पूजा की; अधोक्षज-धिया—यद्यपि गर्गमुनि इन्द्रियों द्वारा दृष्टिगोचर थे किन्तु नन्द महाराज उनके प्रति अपार सम्मान रखते थे; प्रणिपात-पुरःसरम्—नन्द महाराज ने उनके सामने गिर कर नमस्कार किया।

जब नन्द महाराज ने गर्गमुनि को अपने घर में उपस्थित देखा तो वे इतने प्रसन्न हुए कि उनके

स्वागत में दोनों हाथ जोड़े उठ खड़े हुए। यद्यपि गर्गमुनि को नन्द महाराज अपनी आँखों से देख रहे थे किन्तु वे उन्हें अधोक्षज मान रहे थे अर्थात् वे भौतिक इन्द्रियों से दिखाई पड़ने वाले सामान्य पुरुष न थे।

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।

नन्दयित्वाब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सु-उपविष्टम्—जब गर्गमुनि ठीक से बैठ गये; कृत-आतिथ्यम्—तथा अतिथि के रूप में उनका स्वागत हो जाने पर; गिरा—शब्दों से; सूनृतया—अत्यन्त मधुर; मुनिम्—गर्गमुनि को; नन्दयित्वा—इस तरह प्रसन्न करके; अब्रवीत्—कहा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; पूर्णस्य—सभी प्रकार से पूर्ण; करवाम किम्—मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ (कृपया आज्ञा दें)।

जब अतिथि रूप में गर्गमुनि का स्वागत हो चुका और वे ठीक से आसन ग्रहण कर चुके तो नन्द महाराज ने भद्र तथा विनीत शब्दों में निवेदन किया: महोदय, भक्त होने के कारण आप सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं। फिर भी आपकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। कृपा करके आज्ञा दें कि मैं आपके लिए क्या करूँ ?

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ।

निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

महत्-विचलनम्—महापुरुषों की गति; नृणाम्—सामान्य पुरुषों के घरों में; गृहिणाम्—विशेषतया गृहस्थों की; दीन-चेतसाम्—जो परिवार के भरण में लगे रहने के कारण सरल चित्त हैं; निःश्रेयसाय—महापुरुष को गृहस्थ के घर जाने का कारण केवल उसे लाभ पहुँचाना है; भगवन्—हे शक्तिशाली भक्त; कल्पते—इस तरह समझना चाहिए; न अन्यथा—और किसी प्रयोजन के लिए नहीं; क्वचित्—किसी भी समय।

हे महानुभाव, हे महान् भक्त, आप जैसे पुरुष अपने स्वार्थ के लिए नहीं अपितु दीनचित्त गृहस्थों के लिए ही स्थान-स्थान पर जाते रहते हैं। अन्यथा इस तरह जगह-जगह घूमने में उन्हें कोई रुचि नहीं रहती।

तात्पर्य : नन्द महाराज ने यथार्थ बात कही है कि भक्त होने के कारण गर्गमुनि को किसी प्रकार की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसी तरह जब कृष्ण आते हैं, तो उन्हें कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वे पूर्ण, आत्माराम हैं। फिर भी वे भक्तों की रक्षा करने तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं (परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्)। भगवान् का यही व्रत है और भक्तों का भी यही सेवाव्रत होता है। पर-उपकार का यह कार्य जो कोई पूरा करता है, वह

भगवान् कृष्ण को अत्यधिक प्रिय होता है (*नच तस्मान् मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः*) । इसी तरह चैतन्य महाप्रभु ने इस पर-उपकार का उपदेश दिया है विशेष रूप से भारतवासियों को—

भारत-भूमिते हैल मनुष्य-जन्म यार ।

जन्म सार्थक करिऽकर पर-उपकार ॥

“जिसने भारतभूमि में मनुष्य के रूप में जन्म लिया है उसे अपना जीवन सफल बनाना चाहिए और अन्यो के लाभ के लिए (पर-उपकार) कार्य करना चाहिए।” (*चैतन्यचरितामृत, आदि ९.४१*) । कुल मिलाकर शुद्ध वैष्णव भक्त का कर्तव्य है कि दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करे ।

नन्द महाराज समझ गये थे कि गर्गमुनि इसी काम के लिए आये हुए हैं अतः अब उनका कर्तव्य था कि वे गर्गमुनि के उपदेश के अनुसार कार्य करें। अतः उन्होंने कहा, “कृपा करके मुझे मेरा कर्तव्य बतलायें।” हर एक की, विशेष रूप से हर गृहस्थ की, ऐसी ही मनोवृत्ति होनी चाहिए। वर्णाश्रम समाज आठ विभागों में संगठित है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। नन्द महाराज स्वयं *गृहिणाम्* अर्थात् गृहस्थ का प्रतिनिधित्व करते थे। वस्तुतः ब्रह्मचारी को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती किन्तु *गृही* तो इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहते हैं। *भगवद्गीता* (२.४४) में कहा गया है— *भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहतचेतसाम्*। हर व्यक्ति इस जगत में अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए आया है, अतः जो लोग इन्द्रिय-तृप्ति में बहुत अधिक लिप्त हैं और जिन्होंने *गृहस्थ आश्रम* स्वीकार किया है उनकी स्थिति बड़ी गम्भीर है। चूँकि इस जगत में हर व्यक्ति इन्द्रिय-तृप्ति की खोज में लगा रहता है, अतः गृहस्थों को *महत्* अर्थात् *महात्मा* बनने का प्रशिक्षण मिलना चाहिए। इसलिए नन्द महाराज ने विशेष रूप से *महद्-विचलनम्* शब्द का प्रयोग किया है। गर्गमुनि को नन्द महाराज के यहाँ जाने में कोई स्वार्थ न था अपितु गृहस्थ होने के कारण नन्द महाराज जीवन का असली लाभ उठाने के लिए किसी भी महात्मा से उपदेश ग्रहण करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। इस तरह वे गर्गमुनि के आदेश को पूरा करने के लिए तैयार थे।

ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ।

प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ज्योतिषाम्—ज्योतिष ज्ञान (मानव समाज में संस्कृति के अन्य पक्षों के साथ साथ ज्योतिष ज्ञान भी आवश्यक है); अयनम्—
नक्षत्रों तथा ग्रहों की गतियाँ; साक्षात्—प्रत्यक्ष; यत् तत् ज्ञानम्—ऐसा ज्ञान; अति-इन्द्रियम्—सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से परे;
प्रणीतम् भवता—आपके द्वारा रचित ज्ञान का सम्यक ग्रंथ; येन—जिससे; पुमान्—कोई भी व्यक्ति; वेद—समझ सकता है;
पर-अवरम्—अपने भाग्य का कारण तथा कार्य।

हे सन्त पुरुष, आपने ज्योतिष ज्ञान को संकलित किया है, जिससे कोई भी मनुष्य अदृश्य भूत और वर्तमान बातों को समझ सकता है। इस ज्ञान के बल पर कोई भी मनुष्य यह समझ सकता है कि पिछले जीवन में उसने क्या किया और वर्तमान जीवन पर उसका कैसा प्रभाव पड़ेगा। आप इसे जानते हैं।

तात्पर्य : अब “भाग्य” की परिभाषा दी जाती है। ऐसे बुद्धिहीन व्यक्ति जो जीवन का अर्थ नहीं समझते वे पशुतुल्य हैं। पशु न तो जीवन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानते हैं न ही इसे समझ सकते हैं। किन्तु धीर मनुष्य इसे समझ सकता है। इसलिए जैसाकि *भगवद्गीता* (२.१३) में कहा गया है—*धीरस्तत्र न मुह्यति*—धीर व्यक्ति मोहित नहीं होता। सचाई तो यह है कि जीवन शाश्वत है फिर भी इस भौतिक जगत में मनुष्य को एक शरीर बदलकर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। इस युग में तो मूर्ख लोग इस सचाई को भी नहीं समझ पाते। कृष्ण कहते हैं (*भगवद्गीता* २.१३)।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

“जिस तरह देहधारी आत्मा इस शरीर में निरन्तर बालपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था से होकर गुजरता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। जो स्वरूपसिद्ध है, वह ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।” परम अधिकारी कृष्ण कहते हैं कि शरीर परिवर्तनशील है और ज्योंही शरीर बदलता है मनुष्य के सारे कार्यक्रम भी बदल जाते हैं। आज मैं एक मनुष्य हूँ या कोई महान् व्यक्ति हूँ किन्तु प्रकृति के नियमों में थोड़े से भी परिवर्तन से मुझे भिन्न प्रकार का शरीर स्वीकार करना होगा। आज मैं मनुष्य हूँ किन्तु कल मैं कुत्ता बन सकता हूँ और तब इस जीवन में मैंने जो भी कार्य किये होंगे वे सब विफल हो जायेंगे। इस सचाई को विरले ही समझ पाते हैं किन्तु जो धीर है, वह इसे समझ सकता है। जो लोग इस भौतिक जगत में भौतिक भोग के लिए आये हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि क्योंकि उनका वर्तमान पद समाप्त होकर ही रहेगा अतः उन्हें अपने कर्म करने के प्रति सावधान रहना चाहिए। यही बात ऋषभदेव ने भी कही है। *न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि*

क्लेशद आसं देहः (भागवत ५.५.४) । यद्यपि यह शरीर नश्वर है किन्तु जब तक हम जीवित रहते हैं तब तक कष्ट सहना ही पड़ता है। चाहे जीवन अल्प हो या दीर्घ, हर एक को भौतिक जीवन के तीन ताप सहने ही होंगे। इसलिए धीर पुरुष को ज्योतिष में रुचि लेनी चाहिए।

नन्द महाराज गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाना चाह रहे थे क्योंकि गर्गमुनि ज्योतिष ज्ञान के प्रकाण्ड पंडित थे जिससे मनुष्य भूत, वर्तमान और भविष्य की अदृश्य घटनाएँ देख सकता है। पिता का कर्तव्य है कि वह अपनी सन्तानों की ज्योतिष-दशा जाने और उनके सुख के लिए जो भी आवश्यक हो करे। फलतः गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से नन्द महाराज ने सुझाव रखा कि गर्गमुनि उनके दोनों पुत्रों, कृष्ण तथा बलराम, की जन्मकुण्डली तैयार कर दें।

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ।

बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; हि—निस्सन्देह; ब्रह्म-विदाम्—ब्रह्म को जानने वाले समस्त ब्राह्मणों में; श्रेष्ठः—श्रेष्ठ; संस्कारान्—शुद्धि के लिए किये गये उत्सव (इन संस्कारों से मनुष्य को दूसरा जन्म मिलता है, संस्काराद्भवेद् द्विजः); कर्तुम् अर्हसि—आप कृपा करके पधारे हैं, तो सम्पन्न करें; बालयोः—इन दोनों पुत्रों (कृष्ण तथा बलराम) का; अनयोः—इन दोनों का; नृणाम्—न केवल उनका अपितु सारे मानव समाज का; जन्मना—जन्म ग्रहण करते ही; ब्राह्मणः—तुरन्त ब्राह्मण बन जाता है; गुरुः—मार्गदर्शक।*

हे प्रभु, आप ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं विशेषतया, क्योंकि आप ज्योतिष शास्त्र से भलीभाँति अवगत हैं। अतएव आप सहज ही हर व्यक्ति के आध्यात्मिक गुरु हैं। ऐसा होते हुए चूँकि आप कृपा करके मेरे घर आये हैं अतएव आप मेरे दोनों पुत्रों का संस्कार सम्पन्न करें।

तात्पर्य : भगवद्गीता (४.१३) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्मविभागशः—समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों वर्णों को होना ही चाहिए। सारे समाज के मार्गदर्शन के लिए ब्राह्मणों की आवश्यकता पड़ती है। यदि वर्णाश्रम धर्म जैसा कोई संस्थान नहीं होता है और यदि मानव समाज में ब्राह्मण जैसा कोई मार्गदर्शक नहीं होता है, तो वह मानव समाज नरक बन जाता है। कलियुग में, विशेष रूप से वर्तमान समय में, असली ब्राह्मण जैसा कोई रह ही नहीं गया है, अतः समाज अस्त-व्यस्त है। पहले योग्य ब्राह्मण होते थे किन्तु वर्तमान समय में यद्यपि अपने को ब्राह्मण कहलाने वाले लोग तो हैं किन्तु उनमें समाज का मार्गदर्शन करने की क्षमता नहीं है। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज में वर्णाश्रम प्रणाली का पुनः सूत्रपात कराने

के लिए उत्सुक है, जिससे जो लोग मोहग्रस्त हैं अथवा कम बुद्धिमान हैं, वे योग्य ब्राह्मणों से मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें।

footnote starts here

*शास्त्रों का आदेश है, *तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्* (मुण्डक उपनिषद् १.२.१२)। हर एक का कर्तव्य है कि ब्राह्मण को गुरु मान कर उसके पास पहुँचे।

footnote ends here

ब्राह्मण का अर्थ है वैष्णव। ब्राह्मण बनने के बाद मानव समाज में विकास की अगली अवस्था वैष्णव बनने की है। जीवन-लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सामान्य लोगों का मार्गदर्शन किया जाना चाहिए अतएव उन्हें विष्णु या भगवान् को समझना चाहिए। वैदिक ज्ञान की समूची पद्धति इसी सिद्धान्त पर आधारित है किन्तु अब लोग लक्ष्य खो चुके हैं (*न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*) और वे एकमात्र इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहते हैं जिसमें उन्हें जीवन के निम्न स्तर में चले जाने का भय बना रहता है (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*)। इससे अन्तर नहीं पड़ता कि कोई ब्राह्मण के रूप में जन्मा है अथवा नहीं। कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण के रूप में जन्म नहीं लेता, वह शूद्र के रूप में जन्मता है। लेकिन ब्राह्मण द्वारा मार्गदर्शन से तथा संस्कार से वह द्विज बनता है और धीरे-धीरे ब्राह्मण बन जाता है। ब्राह्मणवाद कोई प्रणाली नहीं जिससे किसी वर्ग विशेष का एकाधिपत्य स्थापित हो सके। हर एक को शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वह ब्राह्मण बन सके। हर व्यक्ति को इतना तो अवसर मिलना ही चाहिए कि वह जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। कोई चाहे ब्राह्मण कुल में जन्म ले या क्षत्रिय अथवा शूद्र परिवार में, उसे उचित ब्राह्मण का मार्गदर्शन मिलना चाहिए और उसे वैष्णव के सर्वोच्च पद तक पहुँचना चाहिए। इस तरह कृष्णभावनामृत आन्दोलन मानव समाज के सही भाग्य को विकसित करने का अवसर प्रदान करता है। नन्द महाराज ने गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे उनके दोनों पुत्रों का संस्कार सम्पन्न करके उन्हें जीवन-लक्ष्य की ओर अग्रसर कराने में मार्गदर्शन करें।

श्रीगर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ।

सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-गर्गः उवाच—गर्गमुनि ने कहा; यदूनाम्—यदुकुल का; अहम्—मैं हूँ; आचार्यः—पुरोहित; ख्यातः च—पहले से यह ज्ञात है; भुवि—सर्वत्र; सर्वदा—सदैव; सुतम्—पुत्र को; मया—मेरे द्वारा; संस्कृतम्—संस्कार सम्पन्न; ते—तुम्हारे; मन्यते—माना जायेगा; देवकी-सुतम्—देवकी-पुत्र ।

गर्गमुनि ने कहा : हे नन्द महाराज, मैं यदुकुल का पुरोहित हूँ। यह सर्वविदित है। अतः यदि मैं आपके पुत्रों का संस्कार सम्पन्न कराता हूँ तो कंस समझेगा कि वे देवकी के पुत्र हैं।

तात्पर्य : गर्गमुनि ने अप्रत्यक्ष रूप से बतला दिया कि कृष्ण यशोदा के नहीं बल्कि देवकी के पुत्र हैं। चूँकि कंस पहले से ही कृष्ण की खोज में था, अतः यदि गर्गमुनि संस्कार कराते तो कंस को पता चल सकता था और इससे महान् संकट उत्पन्न हो जाता। यह तर्क किया जा सकता है कि यद्यपि गर्गमुनि यदुवंश के पुरोहित थे और नन्द महाराज भी यदुवंशी थे किन्तु नन्द महाराज क्षत्रिय कर्म नहीं कर रहे थे। इसीलिए गर्गमुनि ने कहा, “यदि मैं आपके पुरोहित के रूप में कर्म करूँ तो इससे पुष्टि होगी कि कृष्ण देवकी-पुत्र हैं।”

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।

देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥

इति सञ्चिन्तयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।

अपि हन्ता गताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

कंसः—राजा कंस; पाप-मतिः—दूषित मन वाला, अत्यन्त पापी; सख्यम्—मित्रता; तव—तुम्हारी; च—भी; आनक-दुन्दुभेः—वसुदेव की; देवक्याः—देवकी का; अष्टमः गर्भः—आठवाँ गर्भ; न—नहीं; स्त्री—औरत; भवितुम् अर्हति—होना सम्भव है; इति—इस तरह; सञ्चिन्तयन्—विचार करते हुए; श्रुत्वा—(यह समाचार) सुनकर; देवक्याः—देवकी की; दारिका-वचः—पुत्री की वाणी; अपि—यद्यपि थी; हन्ता गत-आशङ्कः—हो सकता है कंस इस बालक को मार डालने का प्रयत्न करे; तर्हि—इसलिए; तत्—वह घटना; नः—हमारे लिए; अनयः भवेत्—बहुत अच्छा न हो।

“कंस बहुत बड़ा कूटनीतिज्ञ होने के साथ ही अत्यन्त पापी है। अतः देवकी की पुत्री योगमाया से यह सुनने के बाद कि उसके मारने वाला बालक अन्यत्र कहीं जन्म ले चुका है और यह सुन चुकने पर कि देवकी के आठवें गर्भ से पुत्री उत्पन्न नहीं हो सकती और यह जानते हुए कि वसुदेव से आपकी मित्रता है जब कंस यह सुनेगा कि यदुकुल के पुरोहित मेरे द्वारा संस्कार कराया गया है, तो इन सब बातों से उसे निश्चित रूप से सन्देह हो जायेगा कि कृष्ण देवकी तथा वसुदेव का पुत्र है। तब वह कृष्ण को मार डालने के उपाय करेगा और यह महान् विपत्ति सिद्ध होगी।

तात्पर्य : कंस जानता था कि योगमाया आखिर कृष्ण तथा विष्णु की दासी है, अतः भले ही वह देवकी की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई हो किन्तु हो सकता है उसे यह तथ्य प्रकट करने के लिए मना किया गया हो। वस्तुतः ऐसा ही हुआ था। गर्गमुनि ने बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक तर्क किया कि कृष्ण का संस्कार उनके द्वारा कराने से बहुत से सन्देह उठ सकते हैं जिससे कंस इस बालक को मार डालने के लिए अत्यन्त कठोर कदम उठा सकता है। कंस पहले ही इस बालक को जान से मार डालने के लिए कई असुर भेज चुका था किन्तु उनमें से कोई भी जीवित नहीं बचा। यदि गर्गमुनि यह संस्कार कराते तो कंस के सन्देह की पूरी तरह पुष्टि हो जाती और वह अधिक कड़े कदम उठाता। गर्गमुनि ने नन्द महाराज को यह चेतावनी दी।

श्रीनन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन्नहसि मामकैरपि गोब्रजे ।

कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-नन्दः उवाच—नन्द महाराज ने (गर्गमुनि से) कहा; अलक्षितः—कंस के जाने बिना; अस्मिन्—इस; रहसि—एकान्त स्थान में; मामकैः—यहाँ तक कि मेरे सम्बन्धियों द्वारा; अपि—इससे भी एकान्त स्थान; गो-ब्रजे—गोशाला में; कुरु—सम्पन्न कीजिये; द्विजाति-संस्कारम्—द्विज बनने का संस्कार (संस्काराद् भवेद् द्विजः); स्वस्ति-वाचन-पूर्वकम्—संस्कार कराने के लिए वैदिक स्तोत्र के उच्चारण द्वारा।

नन्द महाराज ने कहा : हे महामुनि, यदि आप सोचते हैं कि आपके द्वारा संस्कार विधि सम्पन्न कराये जाने से कंस सशंकित होगा तो चुपके से वैदिक मंत्रोच्चार करें और मेरे घर की इस गोशाला में ही यह द्विज संस्कार पूरा करें जिससे और तो और मेरे सम्बन्धी तक न जान पायें क्योंकि यह संस्कार अत्यावश्यक है।

तात्पर्य : नन्द महाराज को संस्कार टालने की बात अच्छी नहीं लगी। अनेक अवरोधों के बावजूद वे चाहते थे कि गर्गमुनि की उपस्थिति का लाभ उठाया जाय और जो आवश्यक हो उसे किया जाय। यह संस्कार ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के लिए विशेष रूप से अनिवार्य है। और चूँकि नन्द महाराज वैश्य थे इसलिए यह संस्कार अनिवार्य था। पूर्वकाल में ऐसे कर्म अनिवार्य थे। *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः* (*भगवद्गीता* ४.१३)। इन संस्कारों के बिना समाज पशुओं का समाज माना जायेगा। गर्गमुनि की उपस्थिति से लाभ उठाने के लिए नन्द महाराज नामकरण संस्कार को बिना तड़क-भड़क के गुप्त रूप से ही सम्पन्न कराना चाह रहे थे। अतः संस्कार के अवसर को मानव समाज का अनिवार्य

कर्तव्य मानना चाहिये। किन्तु कलियुग में लोग इस अनिवार्यता को भूल चुके हैं। *मन्दा: सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः* (भागवत १.१.१०)। इस युग में लोग बुरे और अभागे हैं। वे अपने जीवन को सफल बनाने के लिए वैदिक आदेशों को स्वीकार नहीं करते। किन्तु नन्द महाराज किसी बात की उपेक्षा नहीं करना चाहते थे। उन्होंने सुखी समाज को आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत बनाये रखने के लिए गर्गमुनि की उपस्थिति का पूरा लाभ आवश्यक कार्य सम्पन्न करने के लिए उठाया। पाँच हजार वर्षों के भीतर समाज कितना पतित हुआ है! *मन्दा: सुमन्दमतयो मन्दभाग्याः*। मनुष्य जीवन लाखों जन्मों के बाद मिलता है और यह शुद्धि (संस्कार) के निमित्त होता है। प्राचीन काल में पिता अपनी सन्तानों को उच्च पद पर उठाने के लिए सभी प्रकार से सहायता करने में उत्सुक रहता था। किन्तु वर्तमान में दिग्भ्रमित होने से लोग अपने बच्चों तक का वध करने के लिए तैयार रहते हैं जिससे उन्हें बच्चों के पालन-पोषण के उत्तरदायित्व से बच जाँँ।

श्रीशुक उवाच

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।

चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सम्प्रार्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; विप्रः—ब्राह्मण, गर्गमुनि, ने; स्व-चिकीर्षितम् एव—जिसे वे पहले से करना चाह रहे थे और जिसके लिए वहाँ गये थे; तत्—वह; चकार—सम्पन्न किया; नाम-करणम्—नामकरण उत्सव; गूढः—गुप्त रूप से; रहसि—एकान्त में; बालयोः—दोनों बालकों (कृष्ण तथा बलराम) का ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब नन्द महाराज ने गर्गमुनि से विशेष प्रार्थना की कि वे जो कुछ पहले से करना चाहते थे उसे करें, तो उन्होंने एकान्त स्थान में कृष्ण तथा बलराम का नामकरण संस्कार सम्पन्न किया ।

श्रीगर्ग उवाच

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ।

आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ।

यदूनामपृथग्भावात्सङ्घर्षणमुशन्त्यपि ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-गर्गः उवाच—गर्गमुनि ने कहा; अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; रोहिणी-पुत्रः—रोहिणी का पुत्र; रमयन्—प्रसन्न करते हुए; सुहृदः—अपने सारे मित्रों तथा सम्बन्धियों को; गुणैः—दिव्य गुणों से; आख्यास्यते—कहलायेगा; रामः—परम भोक्ता, राम नाम से; इति—इस तरह; बल-आधिक्यात्—असाधारण बल होने से; बलम् विदुः—बलराम नाम से विख्यात होगा; यदूनाम्—

यदुवंश का; अपृथक्-भावात्—आपसे पृथक् न हो सकने के कारण; सङ्कर्षणम्—संकर्षण नाम से अथवा दो परिवारों को जोड़ने वाला; उशान्ति—आकर्षित करता है; अपि—भी।

गर्गमुनि ने कहा : यह रोहिणी-पुत्र अपने दिव्य गुणों से अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों को सभी तरह का सुख प्रदान करेगा। अतः यह राम कहलायेगा। और असाधारण शारीरिक बल का प्रदर्शन करने के कारण यह बलराम भी कहलायेगा। चूँकि यह दो परिवारों—वसुदेव तथा नन्द महाराज के परिवारों—को जोड़ने वाला है, अतः यह संकर्षण भी कहलायेगा।

तात्पर्य : बलदेव वस्तुतः देवकी-पुत्र थे किन्तु उन्हें देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया था। यह तथ्य प्रकट नहीं किया गया था। हरिवंश के अनुसार—

प्रत्युवाच ततो रामः सर्वास्तानभितः स्थितान्।

यादवेष्वपि सर्वेषु भवन्तो मम वल्लभाः ॥

गर्गमुनि ने तो नन्द महाराज के सामने यह प्रकट कर दिया कि बलराम संकर्षण कहलायेगा क्योंकि वह दो परिवारों—यदुवंश तथा नन्दवंश—को जोड़ने वाला है जिनमें से एक क्षत्रिय वंश है और दूसरा वैश्य वंश। दोनों परिवारों के पूर्वज एक थे, अन्तर इतना ही था कि नन्द वैश्य पत्नी से उत्पन्न हुए थे और वसुदेव क्षत्रिय पत्नी से। बाद में नन्द महाराज ने वैश्य कन्या से विवाह किया और वसुदेव ने क्षत्रिय कन्या से। इस तरह एक ही पिता से दोनों उत्पन्न थे किन्तु वे क्षत्रिय तथा वैश्य परिवारों में बँट गये। अब बलदेव ने उन दोनों को जोड़ दिया, इसलिए वे संकर्षण कहलाये।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णातां गतः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आसन्—थे; वर्णाः त्रयः—तीन रंग; हि—निस्सन्देह; अस्य—तुम्हारे पुत्र कृष्ण के; गृह्णतः—स्वीकार करते हुए; अनुयुगम् तनूः—विभिन्न युगों के अनुसार दिव्य शरीर; शुक्लः—कभी गौर (श्वेत); रक्तः—कभी लाल; तथा—और; पीतः—कभी पीला; इदानीम् कृष्णाताम् गतः—सम्प्रति उन्होंने श्याम (काला) रंग धारण किया है।

आपका यह पुत्र कृष्ण हर युग में अवतार के रूप में प्रकट होता है। भूतकाल में उसने तीन विभिन्न रंग—गौर, लाल तथा पीला—धारण किये और अब वह श्याम (काले) रंग में उत्पन्न हुआ है [अन्य द्वापर युग में वह शुक (तोता) के रंग में (भगवान् रामचन्द्र के रूप में) उत्पन्न हुआ। अब ऐसे सारे अवतार कृष्ण में एकत्र हो गये हैं] ।

तात्पर्य : गर्गमुनि ने कृष्ण की स्थिति कुछ-कुछ बतलाते हुए और कुछ-कुछ छिपाते हुए संकेत

किया, “आपका पुत्र महापुरुष है और वह विभिन्न युगों में अपने शरीर का रंग बदल सकता है।” गृह्यतः शब्द सूचित करता है कि कृष्ण स्वेच्छानुसार चुनाव कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं अतएव जो चाहें सो कर सकते हैं। वैदिक साहित्य में विभिन्न युगों में भगवान् द्वारा धारण किये जाने वाले रंगों की व्याख्या की गई है अतएव जब गर्गमुनि ने यह कहा कि “आपका पुत्र ये रंग धारण कर चुका है” तो अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने यह कहा, “वह भगवान् है।” कंस के अत्याचारों के कारण गर्गमुनि यह तथ्य प्रकट नहीं करना चाहते थे किन्तु परोक्ष रूप में उन्होंने नन्द महाराज को बतला दिया कि उनका पुत्र कृष्ण वास्तव में भगवान् है।

श्रील जीव गोस्वामी ने क्रमसन्दर्भ नामक पुस्तक में इस श्लोक का तात्पर्य दिया है। प्रत्येक युग में भगवान् या तो श्वेत (शुक्ल), या लाल या पीले रंग में प्रकट होते हैं किन्तु इस बार वे अपने मूल काले (श्याम) रूप में साक्षात् प्रकट हुए हैं और जैसाकि गर्गमुनि ने भविष्यवाणी की है उन्होंने नारायण की शक्ति प्रदर्शित की। चूँकि इस रूप में भगवान् पूर्णरूपेण स्वयं का प्रदर्शन करते हैं अतएव उनका नाम श्रीकृष्ण अर्थात् सर्व-आकर्षक है।

वस्तुतः कृष्ण सारे अवतारों के स्रोत हैं अतएव विभिन्न अवतारों के भिन्न भिन्न स्वरूप कृष्ण में निहित रहते हैं। जब कृष्ण अवतरित होते हैं, तो अन्य अवतारों के सारे गुण उनमें पहले से वर्तमान रहते हैं। अन्य अवतार कृष्ण के आंशिक स्वरूप होते हैं किन्तु कृष्ण स्वयं परम पुरुष के पूर्ण अवतार हैं। यह समझ लेना चाहिए कि परम पुरुष चाहे शुक्ल रूप में प्रकट हों चाहे रक्त या पीत रूप में, वे रहते वही पुरुष हैं। जब वे विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, तो वे विभिन्न रंग धारण करते हैं, जिस तरह कि सूर्य प्रकाश में सात रंग होते हैं। कभी कभी ये रंग पृथक्-पृथक् प्रकट होते हैं अन्यथा सूर्य प्रकाश चमकीले प्रकाश जैसा दिखता है। कृष्ण अवतार में विभिन्न अवतार—यथा मन्वन्तर अवतार, लीला अवतार तथा दश अवतार—सम्मिलित रहते हैं। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो अन्य सारे अवतार उनके साथ साथ प्रकट होते हैं। जैसाकि श्रीमद्भागवत (१.३.२६) में वर्णन आया है—

अवतार ह्यसंख्येय हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।

यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥

विभिन्न अवतार सतत प्रवाहित जल की तरह लगातार प्रकट होते रहते हैं। जिस तरह प्रवाहित जल

में लहरों की संख्या की गणना नहीं की जा सकती उसी तरह अवतारों की कोई सीमा नहीं है। और कृष्ण सभी अवतारों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं क्योंकि वे समस्त अवतारों के स्रोत हैं। कृष्ण अंशी हैं और अन्य अंश हैं। सारे जीव जिसमें हम सभी सम्मिलित हैं; अंश हैं (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः*)। ये अंश विभिन्न माप के हैं। मनुष्य (जो क्षुद्र अंश हैं) तथा देवता, *विष्णुतत्त्व* तथा अन्य सारे जीव परमेश्वर के अंश हैं। *नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् (कठ उपनिषद् २.२.१३)*। कृष्ण सारे जीवों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं और जब कृष्ण विद्यमान रहते हैं, तो सारे अवतार उनमें निहित रहते हैं।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध में प्रत्येक युग के अवतारों का क्रमानुसार वर्णन हुआ है। भागवत का कथन है—*कृते शुक्लश्चतुर्बाहु, त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ, द्वापरे भगवान् श्यामः तथा कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्*। हम देखते हैं कि कलियुग में भगवान् पीतवर्ण में गौर-सुन्दर के रूप में प्रकट हुए यद्यपि भागवत में उन्हें कृष्णवर्णम् कहा गया है। इन सब कथनों में समन्वय स्थापित करने के लिए यह समझना चाहिए कि यद्यपि कुछ युगों में कुछ रंगों का प्राधान्य रहता है किन्तु प्रत्येक युग में, जब जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो सारे रंग उपस्थित रहते हैं। कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्—यद्यपि चैतन्य महाप्रभु कृष्ण या काले रंग से रहित प्रकट होते हैं किन्तु उन्हें साक्षात् कृष्ण माना जाता है। इदानीं कृष्णतां गतः। विभिन्न वर्णों में प्रकट होने वाला वही आदि कृष्ण अब प्रकट हुआ है। आसन् शब्द बतलाता है कि वे सदैव विद्यमान रहते हैं। जब भी भगवान् अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकट होते हैं, तो वे कृष्ण-वर्ण के रहते हैं यद्यपि वे विभिन्न रंगों में प्रकट होते हैं। प्रह्लाद महाराज कहते हैं कि चैतन्य महाप्रभु छत्र हैं अर्थात् वे कृष्ण होकर भी पीले रंग से आवृत रहते हैं। इसलिए गौड़ीय वैष्णव इस निष्कर्ष को मानते हैं कि यद्यपि चैतन्य महाप्रभु पीत रंग में प्रकट हुए किन्तु वे कृष्ण हैं।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञै संकीर्तनप्राथैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

(*भागवत ११.५.३२*)

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।

वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

प्राक्—पहले; अयम्—यह बालक; वसुदेवस्य—वसुदेव का; क्वचित्—कभी कभी; जातः—उत्पन्न हुआ था; तव—तुम्हारा; आत्मजः—पुत्र कृष्ण; वासुदेवः—अतएव उसका नाम वासुदेव रखा जा सकता है; इति—इस प्रकार; श्रीमान्—अत्यन्त सुन्दर; अभिज्ञाः—विद्वान्; सम्प्रचक्षते—कृष्ण को वासुदेव भी कहते हैं।

अनेक कारणों से आपका यह सुन्दर पुत्र पहले कभी वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट हुआ था।

अतएव जो विद्वान हैं, वे इस बालक को कभी कभी वासुदेव कहते हैं।

तात्पर्य : गर्गमुनि ने अप्रत्यक्ष रीति से यह बतला दिया, “मूलतः यह बालक वसुदेव के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था, यद्यपि अब यह आपके पुत्र की भाँति कार्य कर रहा है। सामान्यतया यह आपका पुत्र है किन्तु कभी कभी यह वसुदेव का पुत्र रहता है।”

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।

गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

बहूनि—विविध; सन्ति—हैं; नामानि—नाम; रूपाणि—रूप; च—भी; सुतस्य—पुत्र के; ते—तुम्हारे; गुण-कर्म-अनु-रूपाणि—उसके गुणों तथा कर्मों के अनुसार; तानि—उनको; अहम्—मैं; वेद—जानता हूँ; नो जनाः—सामान्य व्यक्ति नहीं।

तुम्हारे इस पुत्र के अपने दिव्य गुणों एवं कर्मों के अनुसार विविध रूप तथा नाम हैं। ये सब मुझे ज्ञात हैं किन्तु सामान्य लोग उन्हें नहीं जानते।

तात्पर्य : बहूनि—भगवान् के अनेक नाम हैं। अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम् आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च। ब्रह्म-संहिता (५.३३) में कहा गया है कि भगवान् एक हैं किन्तु उनके रूप तथा नाम अनेक हैं। ऐसा नहीं है कि गर्गमुनि ने बालक का जो नाम कृष्ण रखा वही उनका एकमात्र नाम था। उनके अन्य नाम भी हैं। यथा—भक्तवत्सल, गिरिधारी, गोविन्द तथा गोपाल। यदि हम कृष्ण शब्द की निरुक्ति पर ध्यान दें तो न सूचित करता है कि वे जन्म तथा मृत्यु के चक्र को रोकने वाले हैं और कृष् का अर्थ है सत्तार्थ अर्थात् जगत (कृष्ण सम्पूर्ण जगत हैं)। कृष् का अर्थ “आकर्षण” तथा न का अर्थ आनन्द भी होता है। कृष्ण को मुकुन्द कहते हैं क्योंकि वे हर एक को आध्यात्मिक, नित्य तथा आनन्दपूर्ण जीवन प्रदान करने वाले हैं। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि जीव को जो थोड़ी-सी स्वतंत्रता मिली है उससे वह कृष्ण के कार्यक्रम को ध्वस्त करना चाहता है। यही “भौतिक रोग” है। इतने पर भी कृष्ण सारे जीवों को दिव्य आनन्द प्रदान करने के लिए इच्छुक रहते हैं फलतः वे विभिन्न

रूपों में प्रकट होते हैं। इसीलिए वे कृष्ण कहलाते हैं। चूँकि गर्गमुनि ज्योतिषाचार्य थे अतएव वे वह सब जानते थे, जो अन्य लोग नहीं जानते थे। फिर भी कृष्ण के इतने नाम हैं कि गर्गमुनि भी उन सबों को नहीं जानते थे। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के अनुसार उनके अनेक नाम तथा रूप हैं।

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ।

अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह बालक; वः—तुम सबों के लिए; श्रेयः—अत्यन्त शुभ; आधास्यत्—शुभ कार्य करेगा; गोप-गोकुल-नन्दनः—जैसे एक ग्वालबाल ग्वालों के परिवार में गोकुल के पुत्र रूप में पैदा हुआ हो; अनेन—इसके द्वारा; सर्व-दुर्गाणि—सभी प्रकार के कष्ट; यूयम्—तुम सभी; अञ्जः—सरलता से; तरिष्यथ—पार कर लो, लाँघ लो।

यह बालक गोकुल के ग्वालों के दिव्य आनन्द को बढ़ाने हेतु तुम्हारे लिए सदैव शुभ कर्म करेगा। इसकी ही कृपा से तुम लोग सारी कठिनाइयों को पार कर सकोगे।

तात्पर्य : कृष्ण ग्वाल-समूहों तथा गौवों के परम मित्र हैं इसीलिए उनकी स्तुति नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च की प्रार्थना के रूप में की जाती है। उनके धाम गोकुल में उनकी लीलाएँ ब्राह्मणों तथा गौवों के अनुकूल होती हैं। उनका सर्वोपरि कार्य है गौवों तथा ब्राह्मणों को सारे सुख देना। वस्तुतः ब्राह्मणों के निमित्त सुखभी गौण है, गौवें ही सर्वोपरि हैं। उनकी उपस्थिति से सारे लोगों की कठिनाइयाँ दूर होंगी और वे दिव्य आनन्द प्राप्त करेंगे।

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।

अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यूसमेधिताः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

पुरा—पूर्वकाल में; अनेन—इसके (कृष्ण) द्वारा; व्रज-पते—हे व्रजराज; साधवः—ईमानदार; दस्यु-पीडिताः—चोर-उचक्यों द्वारा सताये हुए; अराजके—अनियमित सरकार होने पर; रक्ष्यमाणाः—सुरक्षित थे; जिग्युः—जीत लिया; दस्युन्—चोर-उचक्यों को; समेधिताः—उन्नति की।

हे नन्द महाराज, जैसा कि इतिहास बतलाता है जब अनियमित अशक्त शासन था और इन्द्र को अपदस्थ कर दिया गया था और लोग चोरों द्वारा सताये जा रहे थे उस समय लोगों की रक्षा करने तथा उनकी समृद्धि के लिए यह बालक प्रकट हुआ और इसने चोर-उचक्यों का दमन कर दिया।

तात्पर्य : इन्द्र ब्रह्माण्ड का राजा है। असुर, चोर तथा उचक्रे सदैव इन्द्र को सताते हैं (इन्द्रारिव्याकुलं लोकम्) किन्तु जब इन्द्र के शत्रुओं (इन्द्रारि) का प्राधान्य हो जाता है, तो कृष्ण प्रकट होते हैं। कृष्णस्तु भगवान् स्वयं। इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे (भागवत १.३.२८)।

य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।

नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ये—जो लोग; एतस्मिन्—इस बालक से; महा-भागाः—अत्यन्त भाग्यशाली; प्रीतिम्—स्नेह; कुर्वन्ति—करते हैं; मानवाः—ऐसे व्यक्ति; न—नहीं; अरयः—शत्रुगण; अभिभवन्ति—जीत पाते हैं; एतान्—कृष्ण के प्रति अनुरक्त लोगों को; विष्णु-पक्षान्—विष्णु के पक्ष वाले देवताओं को; इव—सदृश; असुराः—असुरगण।

देवताओं के पक्ष में सदैव भगवान् विष्णु के रहने से असुरगण देवताओं को हानि नहीं पहुँचा सकते। इसी तरह कोई भी व्यक्ति या समुदाय जो कृष्ण के प्रति अनुरक्त है अत्यन्त भाग्यशाली है। चूँकि ऐसे लोग कृष्ण से अत्यधिक स्नेह रखते हैं अतएव वे कंस के संगियों यथा असुरों (या आन्तरिक शत्रु तथा इन्द्रियों) द्वारा कभी परास्त नहीं किये जा सकते।

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।

श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; नन्द—हे नन्द महाराज; आत्मजः—आपका पुत्र; अयम्—यह; ते—तुम्हारा; नारायण-समः—नारायण के सदृश (जो दिव्य गुण वाला है); गुणैः—गुणों से; श्रिया—ऐश्वर्य से; कीर्त्या—अपने नाम और यश से; अनुभावेन—तथा अपने प्रभाव से; गोपायस्व—इस बालक का पालन करो; समाहितः—अत्यन्त ध्यानपूर्वक तथा सावधानी से।

अतएव हे नन्द महाराज, निष्कर्ष यह है कि आपका यह पुत्र नारायण के सदृश है। यह अपने दिव्य गुण, ऐश्वर्य, नाम, यश तथा प्रभाव से नारायण के ही समान है। आप इस बालक का बड़े ध्यान से और सावधानी से पालन करें।

तात्पर्य : इस श्लोक में नारायण-समः शब्द महत्त्वपूर्ण है। नारायण की कोई समता नहीं। वे असमौर्ध्व हैं—कोई न तो उनके समान है और न उनसे बढ़कर। शास्त्र में कहा गया है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।

समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम् ॥

जो कोई नारायण की समता बड़े से बड़े देवता यहाँ तक कि शिवजी या ब्रह्माजी से भी करता है,

वह पाषण्डी है। नारायण की समता कोई नहीं कर सकता। फिर भी गर्गमुनि ने *सम* शब्द का प्रयोग किया क्योंकि वे कृष्ण को भगवान् बतलाना चाह रहे थे, जो नन्द महाराज के पुत्र बन चुके थे। वे नन्द महाराज के मन में इस बात पर जोर देना चाहते थे कि “आपका आराध्य देव नारायण आप पर इतना प्रसन्न है कि उसने आपके लिए ऐसा पुत्र भेजा है, जो गुणों में लगभग उन्हीं के समान है। इसलिए आप उसका नाम उनसे मिलता-जुलता जैसे मुकुन्द या मधुसूदन रख सकते हैं। किन्तु सदा याद रखें कि जब भी आप कोई उत्तम कार्य करना चाहेंगे तो अनेक बाधाएँ आयेंगी। अतएव आप इस बालक का पालन तथा रक्षा बड़ी ही सावधानी से करें। यदि आप इस बालक की रक्षा सावधानी के साथ करेंगे तो जिस तरह नारायण सदैव आपकी रक्षा करता है उसी तरह यह बालक नारायण जैसा ही होगा।” गर्गमुनि ने यह भी इंगित किया कि यद्यपि यह बालक नारायण के समान ही गुणवान है, किन्तु यह *रास विहारी* के रूप में नारायण से भी बढ़कर आनन्द भोगेगा। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है—
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानम्—उनकी सेवा अनेक गोपियाँ करेंगी जो लक्ष्मी के ही समान होंगी।

श्रीशुक उवाच

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।

नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आत्मानम्—परम सत्य परमात्मा को; समादिश्य—पूर्णतया आदेश देकर; गर्गे—जब गर्गमुनि; च—भी; स्व-गृहम्—अपने घर; गते—चले गये; नन्दः—नन्द महाराज ने; प्रमुदितः—अत्यन्त प्रसन्न; मेने—विचार किया; आत्मानम्—अपने आपको; पूर्णम् आशिषाम्—परम भाग्यशाली ।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब नन्द महाराज को कृष्ण के विषय में उपदेश देकर गर्गमुनि अपने घर चले गये तो नन्द महाराज अत्यधिक प्रसन्न हुए और अपने को परम भाग्यशाली समझने लगे ।

तात्पर्य : कृष्ण परमात्मा हैं और नन्द महाराज जीवात्मा । गर्गमुनि के उपदेश से दोनों ही धन्य हो गये। नन्द महाराज पूतना तथा शकटासुर जैसे असुरों से कृष्ण की सुरक्षा की बात सोचते रहते थे और चूँकि उन्हें ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ था इसलिए उन्होंने अपने को परम भाग्यशाली माना ।

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।

जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजहतुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कालेन—समय के; व्रजता—बीतने पर; अल्पेन—अल्प अवधि; गोकुले—गोकुल या व्रजधाम में; राम-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण ने; जानुभ्याम्—घुटनों के बल; सह पाणिभ्याम्—हाथों के सहारे; रिङ्गमाणौ—रेंगते हुए; विजहतुः—खिलवाड़ किया।

कुछ समय बीतने के बाद राम तथा कृष्ण दोनों भाई अपने घुटनों तथा हाथों के बल व्रज के आँगन में रेंगने लगे और इस तरह बालपन के खेल का आनंद उठाने लगे।

तात्पर्य : एक ब्राह्मण भक्त कहता है—

श्रुतिं अपरे स्मृतिं इतरे भारतम् अन्ये भजन्तु भवभीतः अहं इह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म।

“भले ही अन्य लोग भवसागर से डर कर वेदों, पुराणों तथा महाभारत की पूजा करें किन्तु मैं नन्द महाराज की पूजा करूँगा जिनके आँगन में परब्रह्म रेंगते हैं।” महाभागवत को कैवल्य अर्थात् भगवान् ब्रह्मज्योति में समा जाना नरक के समान लगता है (*नरकायते*)। किन्तु यहाँ पर मनुष्य नन्द महाराज के आँगन में कृष्ण तथा बलराम के रेंगने का चिन्तन मात्र करके ही दिव्य आनन्द में लीन रह सकता है। जब तक कोई कृष्ण-लीला के, विशेष रूप से कृष्ण की बाल-लीलाओं के विचार में मग्न रहता है जैसाकि महाराज परीक्षित चाह रहे थे तब तक वह वास्तविक कैवल्य में लीन रहता है। इसीलिए व्यासदेव ने *श्रीमद्भागवत* की रचना की। *लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् (भागवत १.७.६)*। व्यासदेव ने नारदमुनि के आदेशानुसार *श्रीमद्भागवत* की रचना की जिससे कोई भी इस ग्रंथ का लाभ उठा सके, कृष्ण की लीलाओं का चिन्तन कर सके और सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाय।

श्रुतिं अपरे स्मृतिं इतरे भारतं अन्ये भजन्तु भवभीतः अहम् इह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म।

तावद्घ्नियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ

घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।

तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं

मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तौ—कृष्ण तथा बलराम दोनों; अद्घ्नियुग्मम् अनुकृष्य—अपने दोनों पाँवों को घसीटते हुए; सरीसृपन्तौ—सरी सृपों की तरह रेंगते; घोष-प्रघोष-रुचिरम्—अपने घुंघरुओं से आवाज करते जो अत्यन्त मधुर थी; व्रज-कर्दमेषु—व्रजभूमि की धरती पर गोबर तथा गोमूत्र से उत्पन्न कीचड़ में; तत्-नाद—उन घुंघरुओं की आवाज से; हृष्ट-मनसौ—अत्यन्त प्रसन्न होकर; अनुसृत्य—पीछे पीछे चलते हुए; लोकम्—अन्य लोगों को; मुग्ध—मोहित होकर; प्रभीत-वत्—उनसे बारम्बार डरते हुए; उपेयतुः—तुरन्त लौट आये; अन्ति मात्रोः—अपनी माताओं की ओर।

जब कृष्ण तथा बलराम अपने पैरों के बल व्रजभूमि में गोबर तथा गोमूत्र से उत्पन्न कीचड़ वाली जगहों में रेंगते थे तो उनका रेंगना सरी सृपों के रेंगने जैसा लगता था और उनके पैरों के

घुंघरुओं की आवाज अत्यन्त मनोहर लगती थी। वे अन्य लोगों के घुंघरुओं की आवाज से अत्यधिक प्रसन्न होकर उनके पीछे पीछे चल देते मानो अपनी माताओं के पास जा रहे हों। किन्तु जब वे यह देखते कि वे दूसरे लोग हैं, तो भयभीत होकर अपनी असली माताओं, यशोदा तथा रोहिणी, के पास लौट आते।

तात्पर्य : ब्रजभूमि में रेंगते हुए कृष्ण तथा बलराम घुंघरुओं की आवाज से मुग्ध हो जाते थे। इससे कभी कभी अन्य लोगों के पीछे-पीछे लगते। उन लोगों को कृष्ण तथा बलराम का रेंगना अत्यधिक आनन्द देता अतः वे चिल्ला पड़ते, “ओह! देखो न! कृष्ण तथा बलराम किस तरह रेंग रहे हैं!” यह सुनकर कृष्ण तथा बलराम समझ जाते कि वे लोग, जिनके पीछे वे जा रहे हैं, उनकी माताएँ नहीं हैं अतः वे अपनी असली माताओं के पास लौट आते। इस तरह कृष्ण तथा बलराम का रेंगना पड़ोस के लोगों के साथ साथ माता यशोदा तथा रोहिणी और दोनों बालकों को भी आनन्द प्रदान करता।

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगृह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य
मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तत्-मातरौ—उनकी माताएँ (रोहिणी तथा यशोदा); निज-सुतौ—अपने अपने पुत्रों को; घृणया—अत्यन्त प्रेमपूर्वक;
स्नुवन्त्यौ—अपने स्तनों का दूध पिलातीं; पङ्क-अङ्क-राग-रुचिरौ—जिनके दिव्य शरीर गोबर तथा गोमूत्र के कीचड़ से सने हुए थे; उपगृह्य—रखवाली करते हुए; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; दत्त्वा—देकर; स्तनम्—स्तन; प्रपिबतोः—दूध पीते हुए;
स्म—निस्सन्देह; मुखम्—मुँह को; निरीक्ष्य—देखकर; मुग्ध-स्मित-अल्प-दशनम्—मुखों से बाहर निकली दाँतुलियों से हँसते;
ययतुः—प्राप्त किया; प्रमोदम्—दिव्य आनन्द।

दोनों बालक गोबर तथा गोमूत्र मिले कीचड़ से सने हुए अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे और जब वे दोनों अपनी माताओं के पास गये तो यशोदा तथा रोहिणी दोनों ने बड़े प्यार से उन्हें उठा लिया, छाती से लगाया और अपने स्तनों से बहता दूध पिलाया। स्तन-पान करते हुए दोनों बालक मुसका रहे थे और उनकी दाँतुलियाँ दिख रही थीं। उनके सुन्दर छोटे-छोटे दाँत देखकर उनकी माताओं को परम आनन्द हुआ।

तात्पर्य : चूँकि माताएँ अपने अपने बच्चों की देखरेख करती थीं इसलिए योगमाया की

व्यवस्थानुसार बच्चों ने सोचा, “ये रहीं हमारी माताएँ” और माताएँ सोचतीं, “ये रहे हमारे पुत्र।” स्नेह के कारण स्वभावतः माताओं के स्तन से स्वतः दूध निकलने लगा और बच्चे उसे पीने लगे। जब माताओं ने बच्चों के दाँत आते देखे तो वे उन्हें गिनतीं और प्रसन्न होतीं। जब बच्चों ने देखा कि माताएँ उन्हें दूध पीने दे रही हैं, तो उन्हें भी दिव्य आनन्द की अनुभूति हुई। ज्यों ज्यों रोहिणी तथा बलराम के और यशोदा तथा कृष्ण के बीच यह स्नेह बढ़ता गया त्यों त्यों उनका दिव्य आनन्द भी बढ़ता रहा।

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीला-

वन्तर्ब्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।

वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ

प्रेक्षन्त्य उञ्जितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

यर्हि—जब; अङ्गना-दर्शनीय—घर के भीतर की स्त्रियों के द्वारा ही दृश्य; कुमार-लीलौ—कृष्ण तथा बलराम द्वारा प्रदर्शित बाल-लीलाएँ; अन्तः-ब्रजे—ब्रज के भीतर, नन्द के घर में; तत्—उस समय; अबलाः—सारी स्त्रियाँ; प्रगृहीत-पुच्छैः—कृष्ण तथा बलराम द्वारा गौवों की पूँछ पकड़ने पर; वत्सैः—बछड़ों द्वारा; इतः ततः—यहाँ वहाँ; उभौ—कृष्ण तथा बलराम दोनों; अनुकृष्यमाणौ—खींच जाने पर; प्रेक्षन्त्यः—ऐसी दृश्य देखती हुई; उञ्जित—छोड़ा हुआ; गृहाः—घर के कामकाज; जहृषुः—अत्यन्त हर्षित हुई; हसन्त्यः—हँसती हुई।

ग्वालबालाएँ नन्द महाराज के घर के भीतर राम तथा कृष्ण दोनों बालकों की लीलाएँ देखकर हर्षित होतीं। बच्चे बछड़ों की पूँछों के पिछले भाग पकड़ लेते तो बछड़े उन्हें इधर-उधर घसीटते। जब स्त्रियाँ ये लीलाएँ देखतीं, तो निश्चय ही अपना कामकाज करना बन्द कर देतीं और हँसने लगतीं तथा इन घटनाओं का आनन्द लूटतीं।

तात्पर्य : उत्सुकतावश रेंगते हुए कृष्ण तथा बलराम कभी कभी बछड़ों की पूँछों के सिरे पकड़ लेते। तब बछड़े यह अनुभव करके कि किसी ने उन्हें पकड़ लिया है इधर-उधर भागने लगते तब बच्चे बछड़ों के भागने से डर कर और दृढ़ता से उन्हें पकड़े रहते। बछड़े भी यह देखकर कि बच्चे पूँछ दृढ़ता से पकड़े हैं, भयभीत हो उठते। तब स्त्रियाँ बच्चों को बचाने आ जातीं और प्रसन्न होकर हँसतीं। यही उनका मनोरंजन था।

शृङ्ख्यग्निदंष्ट्रयसिजलद्विजकण्टकेभ्यः

क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धम् ।

गृहाणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ

शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

शृङ्गी—गाय; अग्नि—आग; दंष्ट्री—बन्दर तथा कुत्ते; असि—तलवार; जल—पानी; द्विज—पक्षी; कण्टकेभ्यः—तथा काँटों के साथ; क्रीडा—परौ अति-चलौ—दोनों बच्चे खेल में व्यस्त तथा अतीव चंचल; स्व-सुतौ—अपने दोनों पुत्रों को; निषेद्धुम्—रोकने के लिए; गृह्णाणि—घर के कामकाज; कर्तुम् अपि—करके; यत्र—जब; न—नहीं; तत्-जनन्यौ—उनकी माताएँ (रोहिणी तथा यशोदा); श्रेकाते—समर्थ; आप्तुः—प्राप्त किया; अलम्—निस्सन्देह; मनसः—मन का; अनवस्थाम्—सन्तुलन।

जब माता यशोदा तथा रोहिणी बच्चों को सींग वाली गायों से, आग से, पंजे तथा दाँत वाले पशुओं यथा बन्दरों, कुत्तों तथा बिल्लियों से एवं काँटों से, जमीन पर रखी तलवारों तथा अन्य हथियारों से होने वाली दुर्घटनाओं से रक्षा करने में अपने को असमर्थ पातीं तो वे सदा चिन्ताग्रस्त हो जातीं जिससे उनके घरेलू कामकाज में बाधा पहुँचती। उस समय वे भौतिक स्नेह के कष्ट नामक दिव्य भाव से सन्तुलन प्राप्त करतीं क्योंकि यह उनके मनों के भीतर से उठता था।

तात्पर्य : कृष्ण की ये सारी लीलाएँ तथा माताओं द्वारा प्रदर्शित खुशियाँ दिव्य हैं, उनमें कुछ भी भौतिक नहीं है। ब्रह्म-संहिता में इन्हें आनन्दचिन्मय रस कहा गया है। आध्यात्मिक जगत में भी भौतिक जगत की ही तरह चिन्ता, रोदन तथा अन्य भावनाएँ पाई जाती हैं किन्तु इनकी यथार्थता दिव्य जगत में ही होती है, जिसकी यह जगत अनुकृति ही है इसलिए माता यशोदा तथा रोहिणी को इनमें दिव्य आनन्द मिलता था।

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।

अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

कालेन अल्पेन—थोड़े समय में ही; राजर्षे—हे राजा (महाराज परीक्षित); रामः कृष्णः च—राम तथा कृष्ण दोनों; गोकुले—गोकुल गाँव में; अघृष्ट-जानुभिः—घुटने के बल रेंगे बिना ही; पद्भिः—अपने पाँवों के बल; विचक्रमतुः—चलने लगे; अञ्जसा—आसानी से।

हे राजा परीक्षित, थोड़े समय में ही राम तथा कृष्ण दोनों अपने पाँवों के बल, रेंगे बिना ही अपने आप गोकुल में सरलता से चलने-फिरने लगे।

तात्पर्य : अब दोनों बालक घुटनों के बल न रेंग कर किसी चीज को पकड़ कर खड़े होने लगे और बिना कठिनाई के अपने पाँवों के बल थोड़ा-थोड़ा चलने-फिरने लगे।

ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्ब्रजबालकैः ।

सहरामो ब्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तु—लेकिन; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; वयस्यैः—अपने साथियों के साथ; व्रज-बालकैः—व्रज के छोटे-छोटे बालकों के साथ; सह-रामः—बलराम के साथ; व्रज-स्त्रीणाम्—व्रज की सारी स्त्रियों के; चिक्रीडे—प्रसन्नतापूर्वक खेलने लगे; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; मुदम्—दिव्य आनन्द।

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण, बलराम सहित, ग्वालों के अन्य बच्चों के साथ खेलने लगे और इस तरह ग्वालों की स्त्रियों में दिव्य आनन्द उत्पन्न करने लगे।

तात्पर्य : सह-रामः शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है “बलराम के साथ”। ऐसी दिव्य-लीलाओं में कृष्ण ही मुख्य नायक हैं और बलराम उनके सहायक होते हैं।

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ।

शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कृष्णस्य—कृष्ण का; गोप्यः—सारी गोपियों ने; रुचिरम्—अत्यन्त आकर्षक; वीक्ष्य—देखकर; कौमार-चापलम्—बाल-लीलाओं की चपलता; शृण्वन्त्याः—बारम्बार सुनने के लिए; किल—निस्सन्देह; तत्-मातुः—माता की उपस्थिति में; इति—इस प्रकार; ह—निस्सन्देह; ऊचुः—कहा; समागताः—एकत्र हुईं।

कृष्ण की अति आकर्षक बाल-सुलभ चञ्चलता को देखकर पड़ोस की सारी गोपियाँ कृष्ण की क्रीड़ाओं के विषय में बारम्बार सुनने के लिए माता यशोदा के पास पहुँचतीं और उनसे इस प्रकार कहतीं।

तात्पर्य : कृष्ण की क्रीड़ाएँ भक्तों को सदैव अत्यधिक आकर्षक लगती हैं। अतः यशोदा की पड़ोसी सखियाँ माता यशोदा को वे सारी बातें बतलातीं जिन्हें वे पड़ोस में कृष्ण को करते देखतीं। माता यशोदा अपने पुत्र की क्रीड़ाएँ सुनने के लिए अपने घर के कामकाज बन्द कर देतीं और पड़ोसी सखियों द्वारा दी गई जानकारी का आनन्द लेतीं।

वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः

स्तेयं स्वाद्वत्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।

मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नान्ति भाण्डं भिन्नन्ति

द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

वत्सान्—बछड़ों को; मुञ्चन्—खाले देने; क्वचित्—कभी; असमये—विषम अवसरों पर; क्रोश-सञ्जात-हासः—इसके बाद जब घर का मुखिया अप्रसन्न होता तो कृष्ण हँसने लगता है; स्तेयम्—चोरी करने से प्राप्त; स्वादु—स्वादु; अन्ति—खाता है; अथ—इस प्रकार; दधि-पयः—दही तथा दूध के बर्तन (मटकी); कल्पितैः—ढूँढ़ निकाली गई; स्तेय-योगैः—चोरी करने की विधि के द्वारा; मर्कान्—बन्दरों को; भोक्ष्यन्—खिलाते हुए; विभजति—बाँट-बाँट कर देता है; सः—वह बन्दर; चेत्—यदि; न—नहीं; अन्ति—खाता है; भाण्डम्—बर्तन; भिन्नन्ति—तोड़ डालता है; द्रव्य-अलाभे—खाने को कुछ न मिलने पर; स-गृह-

कुपितः—वह घर के रहने वालों पर गुस्साता है; याति—चला जाता है; उपक्रोश्य—चिढ़ाते हुए; तोकान्—छोटे-छोटे बच्चों को।

“हे सखी यशोदा, आपका बेटा कभी कभी हमारे घरों में गौवें दुहने के पहले आ जाता है और बछड़ों को खोल देता है और जब घर का मालिक क्रोध करता है, तो आपका बेटा केवल मुसका देता है। कभी कभी वह कोई ऐसी युक्ति निकालता है, जिससे वह स्वादिष्ट दही, मक्खन तथा दूध चुरा लेता है और तब उन्हें खाता-पीता है। जब बन्दर एकत्र होते हैं, तो वह उनमें से सब बाँट देता है और जब उनके पेट भर जाते हैं और वे अधिक नहीं खा पाते तो वह बर्तनों को तोड़ जाता है। कभी कभी, यदि उसे घर से मक्खन या दूध चुराने का अवसर नहीं मिलता तो वह घरवालों पर क्रोधित होता है और बदला लेने के लिए वह छोटे-छोटे बच्चों को चिकुटी काट कर भड़का जाता है। और जब बच्चे रोने लगते हैं, तो कृष्ण भाग लेता है।

तात्पर्य : कृष्ण के बचपन के उपद्रवों का वर्णन माता यशोदा के सामने शिकायत के रूप में किया जाता था। कृष्ण कभी कभी अपने किसी पड़ोसी के घर में घुस जाते और यदि वहाँ किसी को न देखते तो गायों के दुहे जाने के समय से पहले ही उनके बछड़ों को खोल देते। वस्तुतः बछड़े तब खोले जाते हैं जब उनकी माताओं को दुहना होता है किन्तु कृष्ण उससे पहले ही बछड़े खोल देते जिससे वे अपनी माताओं का सारा दूध पी जाते। जब ग्वाले इसे देखते तो वे कृष्ण का पीछा करते और उन्हें पकड़ने का प्रयत्न यह कहते हुए करते, “यह रहा उत्पाती कृष्ण” किन्तु वे भाग कर दूसरे घर में घुस जाते जहाँ वे मक्खन तथा दही चुराने की कोई तरकीब ढूँढ निकालते। तब ग्वाले पुनः उन्हें पकड़ने का प्रयास यह कहते हुए करते, “यह रहा मक्खन चोर। पकड़ो इसे।” और वे क्रोधित होते। किन्तु कृष्ण केवल हँस देते और वे सारी बातें भूल जाते। कभी कभी कृष्ण उनकी उपस्थिति में दही तथा मक्खन खाने लगते। कृष्ण को दही-मक्खन खाने की आवश्यकता नहीं रहती थी क्योंकि पेट भरा रहता था फिर भी वे खाने का प्रयास करते अथवा बर्तन तोड़ देते और उनके भीतर जो कुछ रहता उसे बन्दरों में बाँट देते। इस तरह कृष्ण हमेशा ऊधम मचाने में लगे रहते। यदि उन्हें किसी घर में चुराने के लिए मक्खन या दही नहीं मिलता था, तो वे कमरे में घुस कर सोते हुए बालकों को चिकोटी काटते और जब बच्चे रोने लगते तो स्वयं भाग लेते।

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
 शिछद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्व्यभाण्डेषु तद्वित् ।
 ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
 काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

हस्त-अग्राह्ये—हाथ न पहुँचने पर; रचयति—बनाता है; विधिम्—उपाय; पीठक—पीढ़ा, लकड़ी की चौकी; उलूखल-
 आद्यैः—तथा ओखली इत्यादि से; शिछद्रम्—छेद; हि—निस्सन्देह; अन्तः-निहित—बर्तन के भीतर की वस्तुएँ; वयुनः—ऐसे ज्ञान
 से; शिक्व्य—शिकहरा, छींका से टांग कर; भाण्डेषु—बर्तनों के भीतर; तत्-वित्—उस ज्ञान में दक्ष; ध्वान्त-आगारे—अँधेरे
 कमरे में; धृत-मणि-गणम्—मूल्यवान मोतियों से सजाया होने के कारण; स्व-अङ्गम्—अपने शरीर को; अर्थ-प्रदीपम्—अँधेरे
 में देखने के लिए आवश्यक प्रकाश में; काले—उसके बाद; गोप्यः—वृद्धा गोपियाँ; यर्हि—ज्योंही; गृह-कृत्येषु—घर के
 कामकाज करने में; सु-व्यग्र-चित्ताः—बुरी तरह लगी रहने से।

“जब दूध तथा दही की मटकी को छत से लटकते छींके में ऊँचा रख दिया जाता है और
 कृष्ण तथा बलराम उस छींके तक नहीं पहुँच पाते तो वे पीढ़ों को जुटाकर तथा मसाले पीसने
 की ओखली को उलट कर उस पर चढ़ कर उस तक पहुँच जाते हैं। बर्तन के भीतर क्या है, वे
 अच्छी तरह जानते हैं अतः उसमें छेद कर देते हैं। जब सयानी गोपिकाएँ कामकाज में लगी रहती
 हैं, तो कभी कभी कृष्ण तथा बलराम अँधेरी कोठरी में चले जाते हैं और अपने शरीर में पहने
 हुए मूल्यवान आभूषणों की मणियों की चमक से उस स्थान को प्रकाशित करके चोरी कर ले
 जाते हैं।

तात्पर्य : पुराने समय में घर घर में दही तथा मक्खन रखा रहता था ताकि आवश्यकता पड़ने पर
 काम आ सके। किन्तु कृष्ण तथा बलराम इतने पीढ़े एक के ऊपर एक रख लेते कि बर्तनों तक पहुँच
 सकें और तब अपने हाथों से बर्तनों में छेद कर लेते जिससे उनके भीतर की सामग्री चू कर नीचे आये
 और वे उसे पी सकें। मक्खन तथा दूध चुराने की यह दूसरी विधि थी। यदि मक्खन तथा दूध किसी
 अँधेरे कमरे में रखा होता तो कृष्ण और बलराम वहाँ जाते और अपने शरीरों में धारण किये गये
 बहुमूल्य मणियों से उस स्थान को प्रकाशित कर लेते। कहने का तात्पर्य यह कि कृष्ण तथा बलराम
 पड़ोस के घरों से दूध तथा मक्खन कई विधियों से चुराया करते थे।

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
 स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ।
 इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
 र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; धाष्ट्यानि—उपद्रव; उशति—स्वच्छ स्थान में; कुरुते—कभी कभी करता है; मेहन-आदीनि—टट्टी पेशाब करना; वास्तौ—घरों में; स्तेय-उपायैः—दूध तथा मक्खन चुराने की विविध युक्तियाँ ढूँढ़कर; विरचित-कृतिः—अत्यन्त दक्ष है; सु-प्रतीकः—अब अच्छे, शिष्ट बालक की तरह बैठा हुआ है; यथा आस्ते—यहाँ रहते हुए; इत्थम्—ये बातें; स्त्रीभिः—गोपियों के द्वारा; स-भय-नयन—अब डरी हुई आँखों से बैठा; श्री-मुख—ऐसा सुन्दर चेहरा; आलोकिनीभिः—गोपियाँ देखने का आनन्द ले रही थीं; व्याख्यात-अर्था—माता यशोदा से उसकी शिकायत करते हुए; प्रहसित-मुखी—हँसती और आनन्द लूटतीं; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; उपालब्धुम्—डराने-धमकाने के लिए; ऐच्छत्—उसकी इच्छा हुई, चाहा।

“जब कृष्ण नटखटपन करते पकड़े जाते हैं, तो घर के मालिक उससे कहते, “अरे चोर” और उस पर बनावटी क्रोध प्रकट करते। तब कृष्ण उत्तर देते, “मैं चोर नहीं हूँ। चोर तुम हो।” कभी कभी कृष्ण क्रोध में आकर हमारे साफ-सुथरे घरों में मल-मूत्र विसर्जन कर देता है। किन्तु हे सखी यशोदा, अब वही दक्ष चोर तुम्हारे सामने अच्छे लड़के की तरह बैठा है।” कभी कभी सभी गोपियाँ कृष्ण को भयातुर आँखों किए बैठे देखती थीं, ताकि माता डाँटे फटकारे नहीं और जब वे कृष्ण का सुन्दर मुखड़ा देखतीं तो उसे डाँटने की बजाय वे उनके मुखड़े को देखती ही रह जातीं और दिव्य आनन्द का अनुभव करतीं। माता यशोदा इस खिलवाड़ पर मन्द-मन्द मुसकातीं और उनका मन अपने भाग्यशाली दिव्य बालक को डाँटने को करता ही नहीं था।

तात्पर्य : कृष्ण अपने पड़ोस में चोरी ही नहीं करते थे अपितु कभी कभी स्वच्छ घरों में मल-मूत्र विसर्जित कर दिया करते थे। जब घर का कोई मालिक पकड़ता तो कृष्ण “तुम्हीं चोर हो” कह कर उसे डाँटते। अपनी बाल-लीलाओं में चोर होने के अतिरिक्त भी कृष्ण युवावस्था में युवतियों को आकृष्ट करके उनके साथ रास-नृत्य करने की चोरी भी करते थे। यही कृष्ण के कार्य हैं। वे अनेक असुरों के वध करने वाले हिंसक भी हैं। यद्यपि संसारी लोगों को अहिंसा तथा अन्य सद्गुण पसन्द आते हैं किन्तु ईश्वर सदा एकसा होते हुए कुछ तथाकथित अनैतिक कार्यों में—यथा चुराने, मारने तथा हिंसा में भी पटु होते हैं। कृष्ण सदैव शुद्ध हैं और परम सत्य हैं। वे भौतिक जीवन का निन्दनीय से निन्दनीय समझा जाने वाला काम कर सकते हैं फिर भी वे आकर्षक हैं। इसलिए उनका नाम कृष्ण है। ऐसे ही स्तर पर दिव्य प्रेम-व्यवहार तथा सेवा का विनिमय होता है। कृष्ण के मुखमण्डल से माताएँ इतनी आकृष्ट होतीं कि वे उन्हें डाँट नहीं सकती थीं प्रत्युत वे हँसतीं और कृष्ण की करतूतों को सुन-सुन कर आनन्दित होतीं। इस तरह गोपियाँ तुष्ट रहती रहीं और कृष्ण उनकी प्रसन्नता का आनन्द लूटते। इसीलिए उनका दूसरा नाम गोपी-जन-वल्लभ है क्योंकि वे गोपियों को प्रसन्न करने के लिए ऐसी

क्रीड़ाओं को खोज लेते थे।

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ।

कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; क्रीडमानाः—बड़े होकर भी अपनी उम्र वाले अन्य बालकों के साथ खेलते; ते—वे; राम-आद्याः—बलराम तथा अन्य; गोप-दारकाः—गवालों के पड़ोस में पैदा हुए अन्य बालक; कृष्णः मृदम् भक्षितवान्—हे माता! कृष्ण ने मिट्टी खाई है; इति—इस प्रकार; मात्रे—माता यशोदा से; न्यवेदयन्—निवेदन किया।

एक दिन जब कृष्ण अपने छोटे साथियों के साथ बलराम तथा अन्य गोप-पुत्रों सहित खेल रहे थे तो उनके सारे साथियों ने एकत्र होकर माता यशोदा से शिकायत की कि “कृष्ण ने मिट्टी खाई है।”

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण की एक अन्य दिव्य क्रीड़ा है, जिसे गोपियों को प्रसन्न करने के लिए ढूँढ़ निकाला गया। पहले तो कृष्ण द्वारा चोरी करने की शिकायत माता यशोदा से की गई किन्तु उन्होंने कृष्ण को नहीं डाँटा। अब एक और प्रयास में जिससे माता यशोदा क्रोध करें और उसे डाँटें, दूसरी शिकायत ढूँढ़ निकाली गई—कि कृष्ण ने मिट्टी खाई है।

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ।

यशोदा भयसम्भ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सा—माता यशोदा; गृहीत्वा—पकड़ कर; करे—हाथ में; कृष्णम्—कृष्ण को; उपालभ्य—डाँटना चाहा; हित-एषिणी—कृष्ण का कल्याण चाहने के कारण वे क्षुब्ध थीं कि इस कृष्ण ने मिट्टी कैसे खाई?; यशोदा—माता यशोदा ने; भय-सम्भ्रान्त-प्रेक्षणा-अक्षम्—कृष्ण के मुँह के भीतर सावधानी से देखने लगी, यह देखने के लिए कि कोई खतरनाक वस्तु तो नहीं भर ली; अभाषत—कृष्ण से कहा।

कृष्ण के साथियों से यह सुनकर, हितैषिणी माता यशोदा ने कृष्ण के मुख के भीतर देखने तथा डाँटने के लिए उन्हें अपने हाथों से ऊपर उठा लिया। वे डरी डरी आँखों से अपने पुत्र से इस प्रकार बोलीं।

कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवात्रहः ।

वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

कस्मात्—क्यों; मृदम्—मिट्टी; अदान्त-आत्मन्—अरे चंचल बालक; भवान्—तुमने; भक्षितवान्—खाई है; रहः—एकान्त स्थान में; वदन्ति—यह शिकायत कर रहे हैं; तावकाः—तुम्हारे दोस्त; हि—निस्सन्देह; एते—वे सभी; कुमाराः—बालक; ते—तुम्हारे; अग्रजः—बड़ा भाई; अपि—भी (पुष्टि करता है); अयम्—यह।

हे कृष्ण, तुम इतने चंचल क्यों हो कि एकान्त स्थान में तुमने मिट्टी खा ली? यह शिकायत तुम्हारे बड़े भाई बलराम समेत तुम्हारे संगी-साथियों ने की है। यह क्योंकर हुआ?

तात्पर्य : माता यशोदा कृष्ण के चंचल स्वभाव से क्षुब्ध थीं। उनका घर मिठाइयों से भरा पड़ा था, तो फिर चंचल बालक ने एकान्त स्थान में मिट्टी क्यों खाई? कृष्ण ने उत्तर दिया, “हे माता! सबों ने षड्यंत्र करके मेरे विरुद्ध शिकायत की है, जिससे आप मुझे दण्ड दें। मेरे बड़े भइया बलराम उनसे मिल गये हैं। वास्तव में मैंने यह काम नहीं किया। मेरी बात सत्य मानें। मुझ पर नाराज न हों और मुझे डाँटे नहीं।”

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशांसिनः ।

यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैंने; भक्षितवान्—मिट्टी खाई है; अम्ब—हे माता; सर्वे—वे सभी; मिथ्य-अभिशांसिनः—सभी झूठे हैं, केवल मेरी शिकायत करते हैं कि आप मुझे डाँटें; यदि—यदि यह यथार्थ है; सत्य-गिरः—कि उन्होंने सच बोला है; तर्हि—तो; समक्षम्—प्रत्यक्ष; पश्य—देखिये; मे—मेरा; मुखम्—मुँह।

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, “हे माता, मैंने मिट्टी कभी नहीं खाई। मेरी शिकायत करने वाले मेरे सारे मित्र झूठे हैं। यदि आप सोचती हैं कि वे सच बोल रहे हैं, तो आप मेरे मुँह के भीतर प्रत्यक्ष देख सकती हैं।

तात्पर्य : मातृ-स्नेह के दिव्य आनन्द को बढ़ाने के लिए कृष्ण ने अपने आप को निर्दोष रूप में प्रस्तुत किया। शास्त्र में वर्णन हुआ है—*ताडनभयान् मिथ्योक्तिर्वात्सल्यरसपोषिका*। इसका अर्थ है कि छोटा बालक कभी कभी झूठ बोलता है। उदाहरणार्थ, वह किसी वस्तु को चुराने पर या कुछ खाने पर भी इनकार करता है कि उसने ऐसा नहीं किया। सामान्यतया भौतिक जगत में ऐसा देखा जाता है किन्तु कृष्ण के साथ बात और ही है। ऐसी क्रीड़ाएँ भक्तों को दिव्य आनन्द प्रदान करने के निमित्त हैं। भगवान् झूठे की भूमिका अदा कर रहे थे और अन्य भक्तों पर झूठा होने का आरोप लगा रहे थे। श्रीमद्भागवत (१०.१२.११) में कहा गया है—*कृतपुण्यपुञ्जाः*—अनेकानेक जन्मों तक भक्ति करने के बाद भक्त को ऐसी आनन्दानुभूति हो सकती है। जिन लोगों ने प्रचुर पुण्यकर्मों के फल संचित कर रखे

हैं उन्हें ही कृष्ण का सान्निध्य और उनके साथ सामान्य खिलाड़ियों की तरह खेलने का अवसर प्राप्त होता है। इन दिव्य सेवा-कार्यकलापों को झूठे आरोप नहीं समझना चाहिए। ऐसे भक्तों पर सामान्य बालकों की तरह झूठ बोलने का कभी आरोप नहीं लगाना चाहिए क्योंकि कृष्ण का ऐसा सान्निध्य प्राप्त करने के लिए उन्होंने बड़ी तपस्या की है (तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च) ।

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ।

व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; एवम्—ऐसा है; तर्हि—तो; व्यादेहि—अपना मुख खोलो (मैं देखना चाहती हूँ); इति उक्तः—माता यशोदा द्वारा ऐसा आदेश दिये जाने पर; सः—उस; भगवान्—भगवान्; हरिः—परमेश्वर ने; व्यादत्त—अपना मुँह खोल दिया; अव्याहत-
ऐश्वर्यः—ऐश्वर्य भक्ति में बिना किसी कमी के (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य); क्रीडा—लीला या खिलवाड़; मनुज-बालकः—मनुष्य के लड़के की तरह।

माता यशोदा ने कृष्ण को धमकाया : “यदि तुमने मिट्टी नहीं खाई है, तो अपना मुँह पूरी तरह खोलो।” इस पर नन्द तथा यशोदा के पुत्र कृष्ण ने मानवी बालक की तरह लीला करने के लिए अपना मुँह खोला। यद्यपि समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी भगवान् कृष्ण ने अपनी माता के वात्सल्य-प्रेम को ठेस नहीं लगाई, फिर भी उनका ऐश्वर्य स्वतः प्रदर्शित हो गया क्योंकि कृष्ण का ऐश्वर्य किसी भी स्थिति में विनष्ट नहीं होता अपितु उचित समय पर प्रकट होता है।

तात्पर्य : अपनी माता के स्नेह भाव को डिगाये बिना ही कृष्ण ने अपना मुँह खोल दिया और अपने प्राकृतिक ऐश्वर्यों को प्रदर्शित कर दिया। जब किसी व्यक्ति को भाँति-भाँति का भोजन परोसा जाता है, तो उसमें सैकड़ों व्यंजन हो सकते हैं किन्तु यदि किसी को साधारण शाक पालक ही पसन्द है, तो वह उसी को खाना चाहेगा। इसी तरह यद्यपि कृष्ण समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण थे किन्तु अब जब उन्हें अपनी माता के आदेश से बालक की तरह अपना मुँह खोलना पड़ा तो उन्होंने वात्सल्य रस के दिव्य विनोद की उपेक्षा नहीं की।

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थासु च खं दिशः ।

साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥

ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ।

वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥

एतद्विचित्रं सहजीवकाल-

स्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
 सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये
 ब्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सा—माता यशोदा ने; तत्र—कृष्ण के खुले मुख के भीतर; दृशे—देखा; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को; जगत्—चर-प्राणी; स्थासु—अचर, जड़ प्राणी; च—तथा; खम्—आकाश; दिशः—दिशाएँ; स-अद्रि—पर्वतों सहित; द्वीप—द्वीप; अब्धि—समुद्र; भू-गोलम्—पृथ्वी की सतह; स-वायु—बहती हवा के समेत; अग्नि—आग; इन्दु—चन्द्रमा; तारकम्—तारे; ज्योतिः—चक्रम्—ग्रह नक्षत्र; जलम्—जल; तेजः—प्रकाश; नभस्वान्—अन्तरिक्ष; वियत्—आकाश; एव—भी; च—तथा; वैकारिकाणि—अहंकार के रूपांतर से बनी सृष्टि; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; मनः—मन; मात्राः—तन्मात्रा; गुणाः त्रयः—तीनों गुण (सत्त्व, रजस् तथा तमस); एतत्—ये सारे; विचित्रम्—तरह तरह के; सह—समेत; जीव-काल—सारे जीवों की आयु; स्वभाव—स्वभाव; कर्म-आशय—कर्म तथा भौतिक भोग की इच्छा (वासना); लिङ्ग-भेदम्—इच्छानुसार शरीरों के भेद; सूनोः तनौ—अपने पुत्र के शरीर में; वीक्ष्य—देखकर; विदारित-आस्ये—खुले मुँह के भीतर; ब्रजम्—ब्रज-धाम को; सह-आत्मानम्—अपने समेत; अवाप—हतप्रभ रह गई; शङ्काम्—शंका तथा आश्चर्य से युक्त ।

जब कृष्ण ने माता यशोदा के आदेश से अपना पूरा मुँह खोला तो उन्होंने कृष्ण के मुख के भीतर सभी चर-अचर प्राणी, बाह्य आकाश, सभी दिशाएँ, पर्वत, द्वीप, समुद्र, पृथ्वीतल, बहती हवा, अग्नि, चन्द्रमा तथा तारे देखे। उन्होंने ग्रह, जल, प्रकाश, वायु, आकाश तथा अहंकार के रूपान्तर द्वारा सृष्टि देखी। उन्होंने इन्द्रियाँ, मन, तन्मात्राएँ, तीनों गुण (सतो, रजो तथा तमो) भी देखे। उन्होंने जीवों की आयु, प्राकृतिक स्वभाव तथा कर्मफल देखे। उन्होंने इच्छाएँ और विभिन्न प्रकार के चर-अचर शरीर देखे। विराट जगत के इन विविध पक्षों के साथ ही स्वयं को तथा वृन्दावन-धाम को देखकर वे अपने पुत्र के स्वभाव से सशंकित तथा भयभीत हो उठीं।

तात्पर्य : स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों पर स्थित सारे विराट जगत, उनकी उत्तेजना के साधन, तीनों गुण, जीव, सृष्टि, पालन, संहार तथा भगवान् की बहिरंगा शक्ति से चल रही सारी क्रियाएँ—ये सभी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् गोविन्द से उद्भूत हैं। सारी वस्तुएँ उनके नियंत्रण में हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* से भी (९.१०) होती है। *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स-चराचरम्*—भौतिक प्रकृति की सारी वस्तुएँ उनके नियंत्रण में हैं। चूँकि ये सारी अभिव्यक्तियाँ गोविन्द से उद्भूत हैं अतएव वे सब की सब गोविन्द के मुख में दिख सकती थीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि माता यशोदा गहन मातृ-स्नेह के कारण भयभीत थीं। उन्हें विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि उनके पुत्र के मुख में ऐसी वस्तुएँ दिख सकती हैं। फिर भी उन्होंने देखा और इसीलिए वे भय तथा आश्चर्य से हक्की-बक्की रह गईं।

किं स्वप्न एतदुत देवमाया

किं वा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
 अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य
 यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; स्वप्नः—सपना; एतत्—यह; उत—अथवा; देव-माया—बहिरंगा शक्ति द्वारा मोहमयी अभिव्यक्ति; किम् वा—
 अथवा; मदीयः—मेरा निजी; बत—निस्सन्देह; बुद्धि-मोहः—बुद्धि का मोह; अथो—अन्यथा; अमुष्य—ऐसे; एव—निस्सन्देह;
 मम अर्भकस्य—मेरे बालक का; यः—जो; कश्चन—कोई; औत्पत्तिकः—प्राकृतिक; आत्म-योगः—निजी योगशक्ति ।

[माता यशोदा अपने में ही तर्क करने लगीं] : क्या यह सपना है या बहिरंगा शक्ति की
 मोहमयी सृष्टि है? कहीं यह मेरी ही बुद्धि से तो प्रकट नहीं हुआ? अथवा यह मेरे बालक की
 कोई योगशक्ति है?

तात्पर्य : जब माता यशोदा ने अपने बालक के मुख के भीतर यह अद्भुत दृश्य देखा तो वे अपने
 मन में तर्क करने लगीं कि कहीं यह स्वप्न तो नहीं। तब उन्होंने विचार किया, “मैं स्वप्न नहीं देख
 रही क्योंकि मेरी आँखें खुली हैं। जो कुछ हो रहा है मैं वही देख रही हूँ। न तो मैं सो रही हूँ, न ही मैं
 सपना देख रही हूँ। तो फिर यह देवमाया से उत्पन्न मोह हो सकता है। किन्तु यह भी सम्भव नहीं। ऐसी
 वस्तुएँ देवतागण मुझे क्यों दिखला रहे हैं? मैं तो साधारण सी स्त्री हूँ जिसका देवताओं से कोई सम्बन्ध
 नहीं। वे देवमाया में मुझे क्यों डालना चाहते हैं? ऐसा सम्भव नहीं।” तब माता यशोदा ने सोचा कि
 यह दृश्य मोह (माया) के कारण है, “मैं ठीक-ठाक हूँ, मुझे कोई रोग नहीं। तो फिर मोह क्यों? ऐसा
 नहीं कि मेरा मस्तिष्क विकृत हो क्योंकि मैं सामान्य रूप से सोच सकती हूँ। अवश्य ही यह दृश्य मेरे
 पुत्र की योगशक्ति के कारण है जैसाकि गर्गमुनि ने भविष्यवाणी की है।” इस तरह वे इस निष्कर्ष पर
 पहुँचीं कि यह दृश्य उन्हीं के पुत्र की ही रचना है, यह और कुछ भी नहीं है।

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं
 चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ।
 यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते
 सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अथो—इसलिए उसने भगवान् की शरण में जाने का निश्चय किया; यथा-वत्—जितनी पूर्णता से कोई अनुभव कर सकती है;
 न—नहीं; वितर्क-गोचरम्—समस्त तर्क, इन्द्रिय बोध से परे; चेतः—चेतना से; मनः—मन से; कर्म—कर्म से; वचोभिः—
 अथवा शब्दों से; अञ्जसा—सबको मिलकर भी हम उन्हें नहीं समझ सकते; यत्-आश्रयम्—जिसके नियंत्रण में; येन—जिसके
 द्वारा; यतः—जिससे; प्रतीयते—अनुभव किया जा सकता है कि हर वस्तु उन्हीं से उद्भूत है; सु-दुर्विभाव्यम्—हमारी चेतना से
 परे; प्रणता अस्मि—शरणागत हूँ; तत्-पदम्—उनके चरणों में।

अतएव मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करती हूँ और उन्हें नमस्कार करती हूँ जो मनुष्य की कल्पना, मन, कर्म, विचार तथा तर्क से परे हैं, जो इस विराट जगत के आदि-कारण हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पालित है और जिनसे हम इस जगत के अस्तित्व का अनुभव करते हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार ही कर सकती हूँ क्योंकि वे मेरे चिन्तन, अनुमान तथा ध्यान से परे हैं। वे मेरे समस्त भौतिक कर्मों से भी परे हैं।

तात्पर्य : मनुष्य को भगवान् की महानता का केवल अनुभव करना होता है। उसे स्थूल या सूक्ष्म किसी भी भौतिक उपाय से उन्हें समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। सरल स्वभाव की स्त्री होने के कारण माता यशोदा इस दृश्य का असली कारण नहीं समझ पाई अतएव मातृ-स्नेहवश उन्होंने भगवान् को केवल नमस्कार किया कि वे उनके बालक की रक्षा करें। वे उन्हें नमस्कार करने के अतिरिक्त कर ही क्या सकती थीं? कहा गया है—*अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् (महाभारत भीष्म पर्व ५.२२)*। तर्क से परम कारण को समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए। जब हम किसी ऐसी समस्या से घिर जाते हैं जिसका कोई कारण ढूँढे नहीं मिलता तो हमारे पास भगवान् की शरण में जाने और उन्हें सादर नमस्कार करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं रह जाता। तभी हम सुरक्षित रह सकते हैं। इस स्थिति में माता यशोदा ने भी यही विधि अपनाई। जो कुछ घटता है उसका मूल कारण भगवान् होता है (*सर्वकारण कारणम्*)। जब कारण का पता न चले तो हमें भगवान् के चरणकमलों पर नमस्कार मात्र करना चाहिए। माता यशोदा इसी निष्कर्ष पर पहुँचीं कि अपने पुत्र के मुख में जो अद्भुत वस्तुएँ उन्होंने देखीं वे उसी बालक के कारण थीं, भले ही वे कारण सुनिश्चित नहीं कर पाईं। अतएव जब भक्त को किसी कष्ट का कारण निश्चित नहीं हो पाता तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है—

तत्तेऽनुकम्पा सुसमीक्षसमाणो

भुञ्जन एवात्मकृतं विपाकम् ।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते

जीवेत यो मुक्ति पदे स दायभाक् ॥

(भागवत १०.१४.८)

भक्त यह स्वीकार करता है कि उसे अपने विगत दुष्कर्मों के कारण ही भगवान् ने यह किञ्चित कष्ट

दिया है। इस तरह वह भगवान् को बारम्बार नमस्कार करता है। ऐसा भक्त मुक्ति पदे स दायभाक् कहलाता है अर्थात् इस भौतिक जगत से उसकी मुक्ति सुनिश्चित है। भगवद्गीता (२.१४) में कहा गया है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।

आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

हमें जानना चाहिए कि भौतिक शरीर से उत्पन्न भौतिक कष्ट आते-जाते रहते हैं अतएव हमें चाहिए कि कष्ट सहन करें और आध्यात्मिक गुरु द्वारा आदिष्ट अपना कर्तव्य निबाहें।

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो

ब्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।

गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे

यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मेरा अस्तित्व (मैं कुछ हूँ); मम—मेरा; असौ—नन्द महाराज; पतिः—पति; एषः—यह (कृष्ण); मे सुतः—मेरा पुत्र है; ब्रज-ईश्वरस्य—मेरे पति नन्द महाराज का; अखिल-वित्त-पा—मैं असीम ऐश्वर्य और सम्पत्ति की मालकिन हूँ; सती—उनकी पत्नी होने से; गोप्यः च—तथा सारी गोपियाँ; गोपाः—सारे ग्वाले (जो मेरे अधीन हैं); सह-गोधनाः च—गौवों तथा बछड़ों समेत; मे—मेरा; यत्-मायया—ऐसी सारी वस्तुएँ जिन्हें मैं कहती हूँ आखिर भगवान् की कृपा से प्राप्त हैं; इत्थम्—इस प्रकार; कुमतिः—मैं झूठे ही सोचती हूँ कि मेरी सम्पत्ति है; सः मे गतिः—अतएव वे ही मेरी एकमात्र शरण हैं (मैं तो निमित्त मात्र हूँ)।

यह तो भगवान् की माया का प्रभाव है, जो मैं मिथ्या ही सोचती हूँ कि नन्द महाराज मेरे पति हैं, कृष्ण मेरा पुत्र है और चूँकि मैं नन्द महाराज की महारानी हूँ इसलिए गौवों तथा बछड़ों की सम्पत्ति मेरे अधिकार में है और सारे ग्वाले तथा उनकी पत्नियाँ मेरी प्रजा हैं। वस्तुतः मैं भी भगवान् के नित्य अधीन हूँ। वे ही मेरे अनन्तिम आश्रय हैं।

तात्पर्य : माता यशोदा के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए हर व्यक्ति को इस त्याग-वृत्ति का पालन करना चाहिए। हमारे पास जितनी भी सम्पत्ति, ऐश्वर्य अथवा जो कुछ भी होता है, वह हमारा नहीं अपितु भगवान् का है, जो हर एक का अनन्तिम आश्रय तथा स्वामी है। भगवद्गीता (५.२९) में स्वयं भगवान् कहते हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानाम् ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

“साधु जन मुझे ही समस्त यज्ञों तथा तपस्याओं का चरम कारण, समस्त लोकों तथा देवताओं का परमेश्वर तथा समस्त जीवों का शुभचिन्तक जान कर भौतिक दुखों से शान्ति प्राप्त करते हैं।”

हमें अपनी सम्पत्ति पर गर्वित नहीं होना चाहिए। जैसाकि माता यशोदा ने यहाँ पर कहा है, “मैं न तो सम्पत्ति की स्वामिनी हूँ न नन्द महाराज की ऐश्वर्यवान् पत्नी। राज्य, सम्पत्ति, गौवें, बछड़े तथा गोपियों जैसी प्रजा एवं ग्वाले मुझे दिये गये हैं।” मनुष्य को “मेरी सम्पत्ति, मेरा पुत्र तथा मेरा पति” इस प्रकार का विचार त्याग देना चाहिए (*जनस्यमोहोऽयमहं ममेति*)।

हर वस्तु भगवान् की है और किसी की नहीं। केवल मोहवश हम गलत सोचते हैं “मैं हूँ या हर वस्तु मेरी है।” इस तरह माता यशोदा पूर्णरूपेण भगवान् की शरणागत हो गई। क्षण-भर के लिए वे निराश होकर सोचने लगीं, “दान तथा अन्य पुण्यकर्मों द्वारा अपने पुत्र की रक्षा करने के मेरे सारे प्रयास व्यर्थ हैं। भगवान् ने मुझे बहुत सारी वस्तुएँ प्रदान की हैं किन्तु जब तक वे हर वस्तु का भार अपने ऊपर नहीं ले लेते तब तक सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं है इसलिए अन्ततोगत्वा मुझे भगवान् की शरण लेनी चाहिए।” जैसाकि प्रह्लाद महाराज ने (*भागवत ७.९.१९*) कहा है— *बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह—माता-पिता, अन्ततः अपने बच्चों की रक्षा नहीं कर सकते। अतो गृहक्षेत्र सुतापवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति* (*भागवत ५.५.८*)। मनुष्य की भूमि, घर, सम्पत्ति तथा उसके पास जो कुछ भी है, वह सब भगवान् का है यद्यपि हम भूलवश सोचते हैं कि “यह मैं हूँ” और “ये सारी वस्तुएँ मेरी हैं।”

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।

वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह; विदित-तत्त्वाम्—हर वस्तु के सत्य को दार्शनिक रूप से समझ जाने पर; गोपिकायाम्—माता यशोदा के प्रति; सः—उस, भगवान् ने; ईश्वरः—परम नियन्ता; वैष्णवीम्—विष्णु-माया या योगमाया का; व्यतनोत्—विस्तार किया; मायाम्—योगमाया की; पुत्र-स्नेह-मयीम्—अपने पुत्र-स्नेह के कारण अत्यन्त अनुरक्त; विभुः—परमेश्वर ने।

माता यशोदा भगवान् की कृपा से असली सत्य को समझ गई। लेकिन अन्तरंगा शक्ति, योगमाया के प्रभाव से परम प्रभु ने उन्हें प्रेरित किया कि वे अपने पुत्र के गहन मातृ-प्रेम में लीन हो जाँय।

तात्पर्य : यद्यपि माता यशोदा को समस्त जीवन-दर्शन समझ में आ गया था किन्तु दूसरे ही क्षण

वे योगमाया के प्रभाव से स्नेहवश अभिभूत हो गई। उन्होंने सोचा कि जब तक वे अपने पुत्र की देखरेख नहीं करेंगीं तब तक वह सुरक्षित कैसे रह सकता है? वे अन्यथा न सोच पाईं और अपना सारा दर्शन भूल गईं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस विस्मृति को योगमाया का प्रभाव बतलाया है (मोहनसाधर्म्यान् मायाम्)। भौतिकतावादी व्यक्ति महामाया द्वारा मुग्ध हो जाते हैं किन्तु भक्तगण दिव्य-शक्ति की व्यवस्था के अन्तर्गत योगमाया द्वारा मुग्ध होते हैं।

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम् ।

प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीद्यथा पुरा ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

सद्यः—इन सारे दार्शनिक चिन्तनों के बाद माता यशोदा ने भगवान् की शरण ग्रहण की; नष्ट-स्मृतिः—कृष्ण के मुँह के भीतर विश्व रूप देखने से नष्ट हुई स्मरणशक्ति; गोपी—माता यशोदा; सा—वह; आरोप्य—बैठाकर; आरोहम्—गोद में; आत्मजम्—अपने पुत्र को; प्रवृद्ध—बढ़ा हुआ; स्नेह—स्नेह से; कलिल—प्रभावित; हृदया—हृदय से; आसीत्—हो गई; यथा पुरा—जैसी पहले थी।

कृष्ण ने अपने मुँह के भीतर जिस विराट रूप को दिखलाया था योगमाया के उस भ्रम को तुरन्त ही भूलकर माता यशोदा ने अपने पुत्र को पूर्ववत् अपनी गोद में ले लिया और अपने दिव्य बालक के प्रति उनके हृदय में और अधिक स्नेह उमड़ आया।

तात्पर्य : माता यशोदा ने कृष्ण के मुँह के भीतर विराट रूप के दृश्य को योगमाया की व्यवस्था माना जो स्वप्न के समान थी। जिस प्रकार स्वप्न के बाद सारी बातें भूल जाती हैं वैसे ही माता यशोदा तुरन्त ही पूरी घटना भूल गई। ज्योंही स्नेह का प्राकृतिक भाव बढ़ा त्योंही उन्होंने निश्चय किया, “अब इस घटना को भुलाये देती हूँ। यह मेरा पुत्र है। मैं इसको चुम लूँ।”

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च साङ्ख्ययोगैश्च सात्वतैः ।

उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

त्रय्या—तीन वेदों (साम, यजुर् तथा अथर्व) के अध्ययन से; च—भी; उपनिषद्भिः च—तथा उपनिषदों के अध्ययन से; साङ्ख्य-योगैः—तथा सांख्य योग विषयक साहित्य के अध्ययन से; च—तथा; सात्वतैः—बड़े बड़े ऋषियों-मुनियों द्वारा अथवा वैष्णव तंत्र पञ्चरात्र का अध्ययन करने से; उपगीयमान-माहात्म्यम्—जिनकी महिमा की पूजा (इन वैदिक ग्रंथों द्वारा) की जाती है; हरिम्—भगवान् को; सा—उसने; अमन्यत—(सामान्य) मान लिया; आत्मजम्—अपना पुत्र।

भगवान् की महिमा का अध्ययन तीनों वेदों, उपनिषदों, सांख्य योग के ग्रंथों तथा अन्य वैष्णव साहित्य के माध्यम से किया जाता है। फिर भी माता यशोदा परम पुरुष को अपना

सामान्य बालक मानती रहीं।

तात्पर्य : जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा है वेदों के अध्ययन का उद्देश्य भगवान् को समझना है (*वेदेषु सर्वैरहमेव वेद्यः*)। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को बतलाया कि वेदों के तीन उद्देश्य हैं। पहला—कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को समझना (*सम्बन्ध*), दूसरा—उस सम्बन्ध के अनुसार कार्य करना (*अभिधेय*) और तीसरा चरम लक्ष्य तक पहुँचना (*प्रयोजन*)। *प्रयोजन* का अर्थ है “आवश्यकताएँ” और परम आवश्यकता की व्याख्या श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई है। *प्रेमा पुमर्थो महान्*—मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है भगवान् के लिए प्रेम की प्राप्ति। यहाँ हम देखते हैं कि माता यशोदा आवश्यकता के सर्वोच्च पद पर हैं क्योंकि वे कृष्ण के प्रेम में पूर्णतया लीन हैं।

प्रारम्भ में वैदिक उद्देश्य का पालन तीन प्रकार से (*त्रयी*) किया जाता है—कर्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड तथा उपासना-काण्ड द्वारा। जब कोई व्यक्ति उपासना-काण्ड की पूर्णावस्था को प्राप्त होता है, तो वह नारायण या भगवान् विष्णु की पूजा करने लगता है। जब पार्वती ने भगवान् महादेव से पूछा कि *उपासना* की सर्वोत्तम विधि क्या है, तो शिवजी ने उत्तर दिया—*आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्। विष्णुपासना* या *विष्ण्वाराधन* सिद्धि की सर्वोच्च अवस्था है, जिसका अनुभव देवकी ने किया। किन्तु यशोदा यहाँ पर कोई उपासना नहीं करतीं क्योंकि उनमें कृष्ण के प्रति दिव्य प्रेम भाव उत्पन्न हो चुका है। अतएव उनकी दशा देवकी की दशा से श्रेष्ठतर है। यह दिखाने के लिए श्रील व्यासदेव लिखते हैं—*त्रय्या चोपनिषद्भिः...*।

जब कोई व्यक्ति वेदों का अध्ययन *विद्या* (ज्ञान) प्राप्त करने के लिए करता है, तो वह मानव सभ्यता में भाग लेने लगता है। इसके बाद वह *ब्रह्मज्ञान* प्राप्त करने के लिए उपनिषदों का अध्ययन करता है और तब परम नियन्ता को समझने के लिए सांख्य योग की ओर अग्रसर होता है जिन्हें *भगवद्गीता* में बताया गया है (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्। पुरुषं शाश्वतं...*)। जब मनुष्य उस पुरुष को परम नियन्ता परमात्मा के रूप में समझ लेता है, तो वह योग विधि में लग जाता है (*ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः*)। लेकिन माता यशोदा इन सारी अवस्थाओं को पार कर चुकी हैं। वे कृष्ण को अपने प्रिय पुत्र के रूप में मान चुकी हैं इसलिए उन्हें आत्म-साक्षात्कार की

सर्वोच्च अवस्था पर स्थित माना जाता है। परम सत्य की अनुभूति तीन रूपों में होती है (*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्दते*) किन्तु वे ऐसे भाव को प्राप्त हैं कि वे ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् को समझने की परवाह भी नहीं करतीं। भगवान् उनका प्रिय पुत्र बनने के लिए स्वयं अवतरित हुए हैं। अतएव माता यशोदा के सौभाग्य की कोई बराबरी नहीं की जा सकती जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है (*रम्या काचिद् उपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता*)। परम सत्य अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की अनुभूति विभिन्न अवस्थाओं में की जा सकती है। *भगवद्गीता* (४.११) में भगवान् कहते हैं—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

“मनुष्य जिस तरह मेरी शरण में आते हैं उन्हें मैं उसी तरह से पुरस्कृत करता हूँ। हे पृथा-पुत्र! हर व्यक्ति मेरे मार्ग का सभी प्रकार से अनुसरण करता है”। मनुष्य पहले कर्मी, फिर ज्ञानी, फिर योगी और तब भक्त या प्रेम-भक्त होता है। किन्तु साक्षात्कार की चरम अवस्था *प्रेम-भक्ति* है, जो वास्तविक अर्थों में माता यशोदा द्वारा प्रदर्शित की गई है।

श्रीराजोवाच

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन्श्रेय एवं महोदयम् ।

यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने और आगे पूछा; नन्दः—महाराज नन्द ने; किम्—क्या; अकरोत्—किया; ब्रह्मन्—हे विद्वान् ब्राह्मण; श्रेयः—पुण्यकर्म यथा तपस्या; एवम्—जिस तरह उन्होंने प्रकट किया; महा-उदयम्—जिससे उन्हें सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त हुई; यशोदा—माता यशोदा; च—भी; महा-भागा—अत्यन्त भाग्यशालिनी; पपौ—पिया; यस्याः—जिसका; स्तनम्—स्तन का दूध; हरिः—भगवान् ने।

माता यशोदा के परम सौभाग्य को सुनकर परीक्षित महाराज ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा : हे विद्वान् ब्राह्मण, भगवान् द्वारा माता यशोदा का स्तन-पान किया गया। उन्होंने तथा नन्द महाराज ने भूतकाल में कौन-से पुण्यकर्म किये जिनसे उन्हें ऐसी प्रेममयी सिद्धि प्राप्त हुई?

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.१६) में कहा गया है—*चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। सुकृति* अर्थात् पुण्यकर्मों के बिना कोई भी व्यक्ति भगवान् की शरण में नहीं आ सकता। भगवान् के पास चार प्रकार के पुण्यात्मा पहुँचते हैं (*आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च*) किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि नन्द महाराज तथा यशोदा इन सबों से बढ़कर थे। इसीलिए परीक्षित महाराज ने पूछा, “उन्होंने पूर्वजन्म

में किस तरह के पुण्यकर्म किये थे जिसके कारण उन्हें ऐसी सिद्धि-अवस्था प्राप्त हो सकी?’’ यद्यपि नन्द महाराज तथा यशोदा को कृष्ण के माता-पिता के रूप में स्वीकार किया गया है फिर भी माता यशोदा कृष्ण के पिता नन्द महाराज से अधिक भाग्यशालिनी थीं क्योंकि नन्द महाराज कभी कभी कृष्ण से बिछुड़ते भी हैं जबकि कृष्ण की माता यशोदा क्षण-भर के लिए भी कृष्ण से विलग नहीं हुई। कृष्ण के शिशुकाल से बाल्यकाल तथा बाल्यकाल से युवावस्था तक माता यशोदा कृष्ण की संगति में ही रहीं। जब कृष्ण बड़े हो गये थे तब भी वे वृन्दावन जाते थे और माता यशोदा की गोद में बैठ जाया करते थे। अतः माता यशोदा के भाग्य की कोई तुलना नहीं की जा सकती। इसीलिए परीक्षित महाराज ने सहज में पूछा— यशोदा च महाभागा ।

पितरौ नान्विन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।

गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

पितरौ—कृष्ण के असली पिता तथा माता ने; न—नहीं; अन्वविन्देताम्—आनन्द प्राप्त किया; कृष्ण—कृष्ण का; उदार—वदान्य; अर्भक-ईहितम्—उसके द्वारा सम्पन्न बाल-लीलाएँ; गायन्ति—महिमा का गान करते हैं; अद्य अपि—आज भी; कवयः—बड़े बड़े ऋषि-मुनि; यत्—जो; लोक-शमल-अपहम्—जिसके सुनने से सारे जगत का कल्मष दूर हो जाता है।

यद्यपि कृष्ण वसुदेव तथा देवकी से इतने प्रसन्न थे कि वे उनके पुत्र रूप में अवतरित हुए किन्तु वे दोनों ही कृष्ण की उदार बाल-लीलाओं का आनन्द नहीं उठा पाये। ये लीलाएँ इतनी महान् हैं कि इनका उच्चार करने मात्र से संसार का कल्मष दूर हो जाता है। किन्तु नन्द महाराज तथा यशोदा ने इन लीलाओं का पूर्ण आनन्द प्राप्त किया अतएव उनकी स्थिति वसुदेव तथा देवकी से सदैव श्रेष्ठतर है।

तात्पर्य : कृष्ण का जन्म वस्तुतः देवकी की कोख से हुआ था किन्तु जन्म होते ही उन्हें माता यशोदा के घर पहुँचा दिया गया। यहाँ तक कि देवकी कृष्ण को अपना स्तन-पान तक न करा पाई। इसलिए परीक्षित महाराज आश्चर्यचकित थे कि यशोदा तथा नन्द महाराज किस तरह इतने भाग्यशाली बन सके कि उन्होंने कृष्ण की उन पूर्ण बाल-लीलाओं का आनन्द प्राप्त किया जिनकी महिमा का गान आज भी सन्त पुरुष करते हैं? उन्होंने पूर्वजन्म में आखिर क्या किया था जिससे उन्हें इतना उच्च पद प्राप्त हो सका।

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया भार्यया सह ।

करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; द्रोणः—द्रोण नामक; वसूनाम्—आठ वसुओं में; प्रवरः—सर्वश्रेष्ठ; धरया—धरा के; भार्यया—अपनी पत्नी; सह—साथ; करिष्यमाणः—सम्पन्न करने के लिए; आदेशान्—आदेश; ब्रह्मणः—ब्रह्मा का; तम्—उससे; उवाच—कहा; ह—भूतकाल में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : भगवान् ब्रह्माजी के आदेश का पालन करने के लिए वसुओं में

श्रेष्ठ द्रोण ने अपनी पत्नी धरा समेत ब्रह्मा से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : ब्रह्म-संहिता (५.३७) में कहा गया है—

आनन्दचिन्मय रस प्रतिभाविताभि-

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषंतमहं भजामि ॥

जब कृष्ण कहीं भी अवतरित होते हैं, तो वे अपने पार्षदों समेत आते हैं। ये पार्षद सामान्य जीव नहीं होते। कृष्ण की लीलाएँ नित्य हैं और जब वे अवतरित होते हैं, तो अपने पार्षदों समेत आते हैं। इसलिए नन्द तथा माता यशोदा कृष्ण के नित्य पिता तथा माता हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब कभी कृष्ण अवतरित होते हैं, तो नन्द तथा यशोदा के साथ-साथ वसुदेव तथा देवकी भी भगवान् के माता-पिता के रूप में अवतरित होते हैं। ये व्यक्ति भगवान् कृष्ण के निजी शरीर के अंश होते हैं। ये सामान्य जीव नहीं होते। महाराज परीक्षित इसे जानते थे किन्तु वे शुकदेव गोस्वामी से जानने के लिए इच्छुक थे कि क्या सामान्य व्यक्ति साधनसिद्धि के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं? सिद्धि दो प्रकार की होती है—नित्यसिद्धि तथा साधनसिद्धि। नित्यसिद्ध वह है, जो कृष्ण का नित्य पार्षद है—कृष्ण के शरीर का अंश है, जबकि साधनसिद्ध सामान्य मनुष्य होता है, जो पुण्यकर्म करके तथा भक्ति के नियमों का पालन करके इसी अवस्था को प्राप्त करता है। इस तरह महाराज परीक्षित के पूछने का उद्देश्य यह था कि क्या सामान्य व्यक्ति माता यशोदा तथा नन्द महाराज के पद को प्राप्त कर सकते हैं? शुकदेव गोस्वामी ने इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया।

जातयोर्नो महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।

भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

जातयोः—जन्म लेकर; नौ—पति-पत्नी दोनों, द्रोण तथा धरा; महादेवे—परम पुरुष, भगवान् में; भुवि—पृथ्वी पर; विश्व-ईश्वरे—सभी लोकों के स्वामी में; हरौ—हरि में; भक्तिः—भक्ति; स्यात्—फैलेगी; परमा—जीवन का चरम लक्ष्य; लोके—संसार में; यया—जिससे; अञ्जः—आसानी से; दुर्गतिम्—दुखमय जीवन से; तरेत्—बच सकता है और उद्धार हो सकता है ।

द्रोण तथा धरा ने कहा : कृपा करके हमें अनुमति दें कि हम पृथ्वी पर जन्म लें जिससे परब्रह्म परम नियन्ता तथा समस्त लोकों के स्वामी भगवान् भी प्रकट हों और भक्ति का प्रसार करें जो जीवन का चरम लक्ष्य है और जिसे ग्रहण करके इस भौतिक जगत में उत्पन्न होने वाले लोग सरलता से भौतिकतावादी जीवन की दुखमय स्थिति से उबर सकें ।

तात्पर्य : द्रोण के इस कथन से स्पष्टतया इंगित होता है कि द्रोण तथा धरा कृष्ण के नित्य पिता तथा माता हैं । जब भी कृष्ण के आविर्भाव की आवश्यकता होती है, तो पहले द्रोण तथा धरा प्रकट होते हैं और तब कृष्ण प्रकट होते हैं । *भगवद्गीता* (४.६) में कृष्ण कहते हैं कि उनका जन्म सामान्य नहीं होता (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्*)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

“यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी विनष्ट नहीं होता और समस्त जीवों का स्वामी मैं ही हूँ किन्तु फिर भी मैं प्रत्येक युग में अपने आदि दिव्य-शरीर में प्रकट होता हूँ ।” कृष्ण के प्रकट होने के पूर्व द्रोण तथा धरा उत्पन्न होते हैं जिससे वे उनके पिता-माता बन सकें । ये ही नन्द महाराज और उनकी पत्नी यशोदा के रूप में प्रकट हुए । दूसरे शब्दों में, *साधनसिद्ध* जीव कभी भी कृष्ण के पिता या माता नहीं बन सकते क्योंकि कृष्ण के माता-पिता पहले से निर्दिष्ट हैं । किन्तु नन्द महाराज तथा माता यशोदा और उनके संगियों के द्वारा प्रदर्शित नियमों का अनुसरण करके वृन्दावनवासी, जो कि सामान्य जीव हैं, उन्हीं जैसा स्नेह प्राप्त कर सकते हैं ।

जब द्रोण तथा धरा से सन्तान उत्पन्न करने के लिए कहा गया तो उन्होंने इस संसार में आने और भगवान् कृष्ण को पुत्र रूप पाने के लिए चुना । कृष्ण के प्राकट्य का अर्थ है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्* । अर्थात् भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का विनाश जब भी कृष्ण आते हैं, तो वे जीवन के परम लक्ष्य, भक्ति का वितरण करते हैं । वे इस कार्य के लिए चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होते

हैं क्योंकि भक्ति को प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति भौतिक जगत (दुःखालयम् अशाश्वतम्) के कष्टों से छुटकारा नहीं पा सकता जहाँ जीव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करते हैं। भगवान् भगवद्गीता (१५.७) में कहते हैं—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातनः ।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

“इस बद्ध जगत के सारे जीव मेरे नित्य अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों के साथ कठिन संघर्ष करते रहते हैं।” सारे जीव सुखी बनने के लिए संघर्ष करते रहते हैं किन्तु भक्ति ग्रहण किये बिना यह सुख सम्भव नहीं। कृष्ण ने भगवद्गीता (९.३) में स्पष्ट कहा है :

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

“हे शत्रुओं के विजेता! जो भक्ति के मार्ग में श्रद्धावान नहीं हैं, वे मुझे प्राप्त नहीं कर सकते बल्कि इस भौतिक जगत में जन्म और मृत्यु के लिए लौट आते हैं।”

मूर्ख लोगों को पता नहीं रहता कि यदि कृष्ण के उपदेशों का पालन नहीं किया गया तो यहाँ पर जीवन कितना खतरनाक है। इसलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन का शुभारम्भ किया गया है, जिससे लोग कृष्णभावनामृत का अभ्यास करके इस भौतिक जगत के खतरनाक जीवन से बच सकें। कृष्णभावनामृत को मानने या न मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह ऐच्छिक नहीं है अपितु अनिवार्य है। यदि हम कृष्णभावनामृत स्वीकार नहीं करते तो हमारा जीवन अत्यन्त संकटमय है। भगवद्गीता में हर बात ठीक से बतलाई गई है। अतः संसार की दुखमय अवस्था से छूटने के लिए भगवद्गीता यथारूप का प्राथमिक अध्ययन करना होगा। भगवद्गीता समझ लेने के बाद श्रीमद्भागवत और तब श्रीचैतन्य-चरितामृत का अध्ययन करना चाहिए। इसीलिए हम इन अमूल्य ग्रंथों को सारे जगत के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे लोग इन्हें पढ़कर दुखमय बद्ध जीवन से छुटकारा पाकर सुखी बनें।

अस्त्वित्युक्तः स भगवान्ब्रजे द्रोणो महायशाः ।

जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराभवत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

अस्तु—ब्रह्मा ने स्वीकार किया, “हाँ, ठीक है”; इति उक्तः—उन्से ऐसा आदेश पाकर; सः—उसने (द्रोण ने); भगवान्—कृष्ण के पिता (भगवान् का पिता भगवान् होता है); व्रजे—व्रजभूमि वृन्दावन में; द्रोणः—द्रोण, अत्यन्त शक्तिशाली वसु ने; महा-यशाः—परम प्रसिद्ध अध्यात्मवादी; जज्ञे—प्रकट हुआ; नन्दः—नन्द महाराज के रूप में; इति—इस प्रकार; ख्यातः—विख्यात है; यशोदा—माता यशोदा के रूप में; सा—वह; धरा—धरा; अभवत्—प्रकट हुई।

जब ब्रह्मा ने कहा, “हाँ, ऐसा ही हो” तो परम भाग्यशाली द्रोण जो भगवान् के समान था, व्रजपुर वृन्दावन में विख्यात नन्द महाराज के रूप में और उनकी पत्नी धरा माता यशोदा के रूप में प्रकट हुए।

तात्पर्य : क्योंकि जब भी इस धरा में कृष्ण प्रकट होते हैं उन्हें पिता-माता—द्रोण तथा धरा उनके शाश्वत पिता-माता—तो चाहिए ही जो नन्द तथा यशोदा के रूप में हों। इन्हें सुतपा तथा पृथिनगर्भ की तरह कृष्ण के माता-पिता बनने के लिए कठिन तपस्या नहीं करनी पड़ी। नित्यसिद्ध तथा साधनसिद्ध में यही अन्तर होता है।

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।

दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; भक्तिः भगवति—भगवान् की भक्ति, भक्ति सम्प्रदाय; पुत्री-भूते—भगवान् के रूप में जो माता यशोदा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए; जनार्दने—भगवान् कृष्ण में; दम्-पत्योः—पति-पत्नी दोनों का; नितराम्—निरन्तर; आसीत्—था; गोप-गोपीषु—गोप तथा गोपियाँ, जो वृन्दावन के वासी तथा नन्द महाराज तथा यशोदा के सान्निध्य में थे; भारत—हे महाराज परीक्षित।

हे भारत श्रेष्ठ महाराज परीक्षित, तत्पश्चात् जब भगवान् कृष्ण नन्द महाराज तथा यशोदा के पुत्र बने तो उन दोनों ने निरन्तर, अचल दिव्य वात्सल्य-प्रेम बनाये रखा तथा उनके सान्निध्य में वृन्दावन के अन्य सभी निवासी, गोप तथा गोपियों ने कृष्ण-भक्ति-संस्कृति का विकास किया।

तात्पर्य : यद्यपि पड़ोसी गोपों तथा गोपियों के यहाँ से कृष्ण द्वारा मक्खन, दही, दूध का चुराना ऊपर ऊपर से दुखदायी प्रतीत होता था किन्तु वस्तुतः यह भक्तिभाव में स्नेह का आदान-प्रदान था। गोप तथा गोपियाँ भगवान् के साथ जितना ही अधिक स्नेह-विनिमय करतीं उनकी भक्ति उतनी ही बढ़ती जाती। कभी कभी हम बाहरी तौर से देखते हैं कि भक्ति में लगा हुआ होने के कारण भक्त कष्ट में रहता है किन्तु तथ्य इससे भिन्न होता है। जब भक्त कृष्ण के लिए कष्ट उठाता है, तो यह कष्ट दिव्य आनन्द होता है। इसे भक्त बने बिना नहीं समझा जा सकता। जब कृष्ण अपनी बाल-लीला प्रकट करते तो न केवल नन्द महाराज तथा माता यशोदा की भक्ति बढ़ती अपितु उनके साथ रहने वालों में भी

भक्ति बढ़ती। दूसरे शब्दों में, जो लोग वृन्दावन के कार्यकलापों का अनुसरण करते हैं, वे सर्वोच्च सिद्धि में भक्ति भी विकसित करेंगे।

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं ब्रजे विभुः ।

सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

कृष्णः—भगवान् कृष्ण ने; ब्रह्मणः—ब्रह्माजी का; आदेशम्—आदेश; सत्यम्—सच; कर्तुम्—बनाने के लिए; ब्रजे—ब्रजभूमि वृन्दावन में; विभुः—परम शक्तिशाली; सह-रामः—बलराम के साथ; वसन्—निवास करते हुए; चक्रे—बढ़ाया; तेषाम्—वृन्दावनवासियों का; प्रीतिम्—आनन्द; स्व-लीलया—अपनी दिव्य लीलाओं से।

इस तरह ब्रह्मा के वर को सत्य करने के लिए भगवान् कृष्ण बलराम समेत ब्रजभूमि वृन्दावन में रहे। उन्होंने विभिन्न बाल-लीलाएँ प्रदर्शित करते हुए नन्द तथा वृन्दावन के अन्य वासियों के दिव्य आनन्द को वर्धित किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “कृष्ण द्वारा अपने मुख के भीतर विराट रूप का प्रदर्शन” नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।